KHAN GLOBAL STUDIES

Kisan Cold Storage, Campus, Mussallahpur,Patna - 06

Mob. : 8877918018, 8757354880

BPSC

संभावित निबंध

with Model Answer

Part 4

By : Dharmendra Sir

के निर्देशन में

संभावित निबंध

क्रम. सं०	निबंध का नाम	पेज. सं०
1.	एक व्यक्ति भयंकर आग में झपकी तो ले सकता है, लेकिन अत्यंत गरीबी में पलक भी नहीं झपका सकता।	03
2.	योग्यता किसी इमारत में लगी एक लिफ्ट की भांति है जिसमें अधिकांश लोग शीर्ष मंजिल पर प्रवेश करते हैं।	04
3.	विध्वंस सृजन को जन्म देता है यदि कुछ ध्वस्त होता है तो वह नई शुरूआत के लिए स्थान रिक्त करता है।	05-06
4.	मनुष्य वही है जो मनुष्य के लिए मरे	07
5.	विकास बनाम विस्थापना	08-11
6.	भारतीय लोकतंत्र : क्या खोया? क्या पाया?	12-17
7.	परहित सरिस धरम नहीं भाई	18
8.	नर हो न निराश करो मन को	19
9.	नई शिक्षा नीति 2020 : चुनौतियाँ एवं संभावनाएँ	20
10.	सादा जीवन उच्च विचार	21
11.	भारतीय संस्कृति : विविधता में एकता	22
12.	स्वतंत्रता के 75वां वर्ष 'बिहार ने क्या खोया क्या पाया	23-24
13.	''लोकतंत्र में मीडिया की बदलती भूमिका''	25-26

1. एक व्यक्ति भयंकर आग में झपकी तो ले सकता है, लेकिन अत्यंत गरीबी में पलक भी नहीं झपका सकता।

दो साल पहले कोरोना एक वैश्विक आपदा के रूप में सामने आया जिसने लोगों के जीवन को बूरी तरह प्रभावित किया, परन्तु शनै:शनै इसकी भयावहता में कमी आई है और भविष्य में संभव है इसका प्रभाव नगण्य हो जाए। लेकिन दूसरी तरफ एक भीषण आपदा 'गरीबी' ऐसी है जो कोरोना पूर्व से ही चली आ रही है और वर्तमान में जस की तस है या यों कहें कोरोना का साथ पाकर कुछ और बढ़ गई है। गरीबी की भयावहता का अंदाजा इस बात से लगाया जा सकता है कि गांधीजी ने इसे हिंसा के सबसे भीषणतम रूप में से एक कहा है।

नि:सन्देह हर आपदा बुरी होती है, लेकिन कोई भी आपदा चाहे कितनी भी बुरी हो, मानव मन में उसके समाप्त होने की आस बनी रहती है जिसकी वजह से वह आपदा के उस पल में भी कुछ संतोष कर लेता है, परंतु गरीबी के संदर्भ में यह बात सही नहीं बैठती। गरीबी का दुष्चक्र अगर एक बार जिसको जकड़ ले उसके लिए वह अंतहीन मर्मान्तक पीड़ा का रूप ले लेती है और उस पीड़ा में व्यक्ति के लिए एक पलक झपकाना संभव नहीं होता है।

गरीबी की भयावहता को जानने से पहले गरीबी को समझना होगा तथा ये भी जानना होगा कि कौन-से कारण इसे अन्य आपदा से भी भयंकर बनाते हैं।

गरीबी एक ऐसी दर्दनाक स्थिति है जहां मनुष्य हर चीज के लिए बेबस और लाचार होता और वह मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति भी नहीं कर पाता, गरीबी व्यक्ति को दासता जैसी स्थिति में डाल देती है जिसका प्रभाव आने वाली पीढ़ियों पर भी बनी रहती है 'पराधीन सपनेहूँ सुख नाहिं'' की स्थिति ही गरीबी है।

जहाँ सामान्य आपदाओं यथा आगजनी, बाढ़, भूकंप इत्यादि का प्रभाव सामान्यत: एक काल विशेष व एक क्षेत्र विशेष तक सीमित रहता है वहीं गरीबी बिना किसी समय सीमा के निरंतर बनी रहती है और व्यक्ति का जीवन इस गरीबी की दासता में ही गुजर जाता है क्योंकि गरीब हो और स्वतंत्र हो यह प्राय: एक असम्भव बात है इस संबंध में प्रसिद्ध रचना मृच्छिकटिकम के वासदत्ता का कथन बहुत ही उपयुक्त बैठता है-

''निर्धनता से मनुष्य में लज्जा आती है, लज्जा से आदमी तेजहीन हो जाता है। निस्तेज मनुष्य का समाज तिरस्कार करता है। तिरस्कृत मनुष्य में वैराग्य भाव उत्पन्न हो जाते हैं तब मनुष्य को शोक होने लगता है। जब मनुष्य शोकाकुल होता है तो उसकी बुद्धि क्षीण होने लगती है और बुद्धिहीन मनुष्य का सर्वनाश हो जाता है''

जहाँ अन्य आपदा का मानसिक प्रभाव सभी लोगों पर समान होता है यह आपदा मनुष्य को हीन होने की भावना को बोध नहीं कराती है। समाज के सभी वर्गों पर इनका प्रभाव एक समान रहता है। वहीं गरीबी मनुष्य को हीनता का बोध कराती है तथा समाज से अलग-अलग भी कर देती है और वर्ग व्यवस्था की मार भी गरीब व्यक्ति को सहनी पड़ती है।

इसी तरह आपदा का आर्थिक, सामाजिक प्रभाव समाज के सभी वर्गों पर पड़ता है लेकिन गरीबी इसे और भयावह बना देता है और यह उस स्थिति में समाज पर कलंक के रूप में उभरती है संसार में तकनीक के प्रयोग से बहुत से देशों ने विभिन्न प्राकृतिक आपदा पर तो कुछ हद तक नियंत्रण पा लिया है लेकिन संसार में शायद ही कोई देश होगा जो गरीबी के अभिशाप से मुक्त हो।

एक पहलू को और समझते तो हम जानेंगे कि गरीबी केवल धन का अभाव नहीं है बल्कि हर उस वस्तु के अभाव को गरीबी कह सकते है, जो मनुष्य के लिए नितांत आवश्यकता है। विचारों की अभावग्रस्तता भी इस संदर्भ में गरीबी ही है जो व्यक्ति को हर समय असंतुष्ट बनाए रखती है।

गरीबी के कारण चाहे जो भी हो, परंतु मनुष्य व मानवता को सर्वनाश से बचाने के लिए आवश्यक है कि गरीबी के हर रूप का नाश हो।

❑❑❑

2. योग्यता किसी इमारत में लगी एक लिफ्ट की भांति है जिसमें अधिकांश लोग शीर्ष मंजिल पर प्रवेश करते हैं।

थ्री इंडियट्स फिल्म का एक 'डायलॉग है-

कामयाबी के पीछे मत भागो,

काबिल बनो,

कामयाबी तुम्हारे पीछे झक मार कर आएगी।

आसान शब्दों में यह योग्यता के महत्व को दर्शाता है और मंजिल प्राप्ति हेतु योग्यता को महत्वपूर्ण सीढ़ी मानता है। इस बात को कुछ लोगों ने बड़ी खुबसूरती से साबित भी किया है। एक साधारण से तथाकथित शुद्र समाज से मौर्य वंश तक के संस्थापक का सफर हो या लंदन से लौटे एक बैरिस्टर का राष्ट्रपिता बनने का सफर हो या अखबार बेचकर जीवन यापन करने वाले बालक का 'मिसाइल मैन' बनने तक का सफर हो, बिना योग्यता के यह संभव नहीं था।

उपर्युक्त उदाहरणों को देखकर मन में कई सवाल उठते हैं क्या योग्यता से मंजिल प्राप्ति होती है अगर होती है तो कैसे? क्या सिर्फ योग्यता से ही मंजिल प्राप्त हो सकती है या कुछ अन्य तत्वों की भी आवश्यकता होती है? क्या योग्यता से सभी को मंजिल प्राप्त होती है या कुछ वंचित भी रह जाते है? क्या योग्यता के बिना भी मंजिल प्राप्त हो सकती है?

योग्यता का मंजिल प्राप्ति से संबंध जानेंगे तो हम पाएंगे। एक योग्य व्यक्ति मंजिल प्राप्ति हेतु हर पक्ष-विपक्ष को देखता है तथा अपनी क्षमता अनुसार उसकी प्राप्ति के लिए प्रयास करता है और यही योग्यता उसे हर मुश्किल का सामना करने के बावजूद सफलता की तरफ ले जाती है। वर्तमान में हर क्षेत्र में योग्यता ने लोगों को अपनी मंजिल प्राप्ति में सहायता की है। यथा खेल क्षेत्र में नीरज चोपड़ा द्वारा ओलंम्पिक में स्वर्ण पदक प्राप्ति, एक आदिवासी महिला का राष्ट्रपति बनना, योग्यता के ही कारण सम्भव था। यहां लाला लाजपत राय द्वारा कहा गया कथन उचित बैठता है-

''इंसान अपने गुणों से ही आगे बढ़ता है न कि किसी दूसरे की दया से।''

हमने यह तो जान लिया कि योग्यता मंजिल प्राप्ति के लिए सीढ़ी का काम करती है परंतु यह भी जानना आवश्यक है कि योग्यता के साथ-साथ अन्य तत्व भी आवश्यक है यथा मेहनत। थॉमस एडिसन द्वारा निरंतर हार के आवजूद प्रयास करते रहना, अब्राहम लिंकन द्वारा निरंतर हार के बावजूद प्रयास करते रहना योग्यता के साथ मेहनत के तत्व को भी उजागर करते हैं। **''करत-करत अभ्यास ते, जड़मति होत सुजान'** जैसी लोकोक्ति भी योग्यता के साथ-साथ निरंतर मेहनत के महत्व को बताती है।

विचार का एक पक्ष यह भी है कि क्या योग्यता होने से व्यक्ति मंजिल प्राप्त कर लेता है। ऊपर से देखें तो यह कथन सही मालूम होता है लेकिन गहन विचार करें तो यह स्थिति सही साबित नहीं होती। इतिहासकार से लेकर वर्तमान तक आधी आबादी को वह मंजिल प्राप्त नहीं हो पाई, जो आबादी के दूसरे हिस्से (पुरुष) को आसानी से प्राप्त हो गई। कुछ एक उदाहरण को छोड़ दें तो आज भी महिलाओं का राजनीति, विज्ञान, शिक्षा, अर्थव्यवस्था इत्यादि क्षेत्र में भागीदारी बहुत कम है। ऐसी स्थिति देखकर मन में सवाल आता है कि क्या उनमें योग्यता की कमी है? या यहां कारण कुछ और है? दलितों के संबंध में भी कमोवेश यही सवाल उठते है जिसे गहनता से देखने पर हम पाएंगे कि योग्यता होने के बावजूद इन्हें सामाजिक व्यवस्था, परिवेश दबाव के कारण वो अवसर नहीं मिल पाएँ जिनके ये हकदार थे। माइकल जे सेन्डल की 'द टायसी ऑफ मेरिट' की अवधारणा भी यही सिद्ध करती है ऐसी स्थिति देखकर मन में यही विचार आता है-

जब कुछ बंदिशें योग्यताओं का गला घोटती है;

तो किसी मंच पर योग्यता भी दम तोड़ती है।

सभी पक्षों को देखने के बाद एक विचार मन में यह भी आता है कि क्या योग्यता के बिना सफलता मिल सकती है। वर्तमान में एक्टर का बेटा एक्टर, नेता का बेटा नेता जैसे उदाहरण भाई-भतीजावाद (नेपोटिज्म) जो योग्यता से अधिक वरीयता को दर्शाता है। गरीब वर्ग के व्यक्ति को वह सफलता बहुत बार नहीं मिल पाती जो अमीर वर्ग को आसानी से प्राप्त हो जाती है।

सभी पक्षों को देखने के बाद कुछ परिस्थितियों को छोड़ दें तो हम पाएंगे कि योग्यता किसी इमारत में लिफ्ट की भांति है जिसमें अधिकांश लोग शीर्ष मंजिल पर प्रवेश करते हैं। योग्यता ही व्यक्ति को असंभव प्रतीत होने वाले कार्य को भी करने हेतु प्रेरित करती है तथा सफलता प्रदान करती है। तभी तो कहा गया है-

''कौन कहता है आसमान में सुराख नहीं हो सकता।

एक पत्थर तो तबीयत से उछालो यारों॥''

❑❑❑

3. विध्वंस सृजन को जन्म देता है यदि कुछ ध्वस्त होता है तो वह नई शुरूआत के लिए स्थान रिक्त करता है।

बात है लगभग 13 बिलियन वर्ष पहले की जब हर तरफ शुन्यता व्याप्त थी ना ही कोई प्राणी था ना ही कोई प्रक्रिया। अनन्त द्रव्यमान मानो एक छोटे से बिंदू में समाया हुआ था, तभी **बिग-बैंग** की घटना के रूप में उस बिन्दु में भयंकर विस्फोट (विध्वंस) होता है। परन्तु विध्वंस के साथ ही सृजन होता है असीम सम्भावना वाले ब्रह्माण्ड का, ना जाने कितनी आकाशगंगाओं का, असंख्य पादप-प्राणियों का तथा मानव के आवास वाले नीले ग्रह का। सोचकर आश्चर्य होता है कि इस महान सृजन की शुरूआत एक विध्वंस के साथ हुई थी।

हमने यह तो जान लिया कि पृथ्वी का सृजन विध्वंस से शुरू हुआ था लेकिन अब यह जानेंगे कि क्या मानवीय जीवन के विभिन्न आयामों में भी विध्वंस सृजन का कारण बनता है?

विध्वंस से होने वाला सृजन सदैव सकारात्मक होता है या नकारात्मक? साथ में यह भी जानेंगे कि क्या सृजन सिर्फ विध्वंस से ही होता है या इसकी कुछ और भी प्रक्रिया है?

उदाहरणों को तार्किकता से शुरू करते हुए हम सबसे पहले वैज्ञानिक पक्ष को देखें तो हम पाते हैं कि विज्ञान में इसकी व्याख्या तो न्यूटन ने बहुत पहले ही कर दी थी। न्यूटन के अनुसार हर क्रिया की समान मात्रा में विपरीत प्रतिक्रिया होती है अर्थात् विध्वंस होगा तो प्रतिक्रियास्वरूप सृजन भी होगा।

विज्ञान और धर्म को प्राय: एक-दूसरे को विरोधी समझा जाता है लेकिन इस मत में हम धर्म में भी विचार समान पाते हैं। हर धर्म में किसी विनाश के साथ सृजन की बात कही गयी है। आप हिंदू धर्म की गीता का उपदेश ही ले लीजिए-

''यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।

अभ्युत्थानामधर्मस्य तदात्मानं सृजाभ्यहम्॥''

अर्थात् धर्म के विध्वंस/ह्रास होने पर पुन: व्यवस्था बनाने हेतु ईश्वर के द्वारा सृजन।

ऐसे ही हम अपनी नजरें इतिहास में दौड़ाए तो पाएंगे कि महान व्यक्तियों का विकास किसी न किसी विध्वंस के साथ ही हुआ था। अशोक के 'महान अशोक' तक के बनने के सफर में अगर एक घटना को हृदयपरिवर्तनकारी माना जाए तो वह था कलिंग का विध्वंस। उस विध्वंस ने एक क्रूर राजा को एक महान राजा बना दिया।

इतिहास और भूगोल की जोड़ी अनन्त काल से बनी हुई है यहाँ भी हम पाते है कि भूगोल के तो लगभग हर सिद्धांत में विध्वंस के साथ सृजन का उदाहरण है। चाहे बात पर्वत निर्माण की हो या जवालामुखी की, विध्वंस-सृजन की यह प्रक्रिया भूसंतुलन स्थापित करने में हमेशा योगदान देती रही है।

ये दबी-दबी सी चिंगारियाँ,

तड़प रही है आजादी को।

लगता है किसी ज्वालामुखी का निर्माण हो रहा।

विज्ञान, धर्म, इतिहास के बाद अब राजनीति की बात करें तो हम पाएंगे कि वर्तमान राजनीति के सिद्धांतों का सृजन विभिन्न क्रांतियों से ही हुआ है। द्वितीय विश्व युद्ध ने एक तरफ जो भीषण तबाही मचाई परंतु दूसरी तरफ उसके फलस्वरूप उपनिवेशवाद का अंत भी हुआ और लोकतंत्र, समानता, स्वतंत्रता जैसे मूल्यों का सृजन भी हुआ।

स्वतंत्रता से युक्त इस समाज में भी जब कभी शोषण हो तो उसे विरोध करने की सीख दी जाती है ना कि हाथ पर हाथ रख कर बैठे रहने की। शायद इसीलिए ही एक स्त्री के अधिकार हनन होने पर 'दुर्गा' बनने की सीख दी जाती है ताकि वह 'महिषासुर' रूपी बुराई का विध्वंस कर सके। वर्तमान परिस्थितियों में भी कुछ ऐसे ही उपायों की आवश्यकता है ऐसे में निम्न पंक्तियां बड़ी ही सटीक बैठती है-

भूख कितनी गिर गई है

कि जिस्म को काट खाने लगी है

ये भूख हवस के उच्चतम छोर पर है

ओ स्त्री

दया का पात्र होना छोड़

आँखों से आँसू बहाना छोड़

कर आजाद खुद को अपनी कैद से तू

सोच मत चल अब हो जा विध्वंसक तू॥

अत: हमने यह तो जान लिया कि विध्वंस से सृजन होता है लेकिन यह भी जानना जरूरी है कि यह सदैव सकारात्मक नहीं होता। उदाहरणतया- हिरोशिमा-नागासाकी की वो परमाणु बम की घटना जिसका प्रभाव आज भी दिखता है उस विध्वंस ने ना जाने कितनी पीढ़ी को लाचार बना दिया। ऐसे ही इतिहास में न जाने कितने राजाओं ने अपने हित की पूर्ति हेतु शासन में आतंक मचाया, अपने ही परिवारजन को मौत के घाट उतारा। विध्वंस का यह रूप देखकर अकबर इलाहाबादी का प्रसिद्ध विचार दिमाग में आता है-

''कौन हमदर्द किसका है जहाँ में अकबर

इक उभरता है यहाँ एक के मिट जाने से॥''

इस प्रकार हमने जाना कि विध्वंस के परिणाम सकारात्मक व नकारात्मक दोनों हो सकते हैं। परन्तु अब हम यह जानेंगे कि क्या सृजन हमेशा विध्वंस से ही होता है या इसकी कोई अन्य प्रक्रिया भी है। वर्तमान मानवीय सभ्यता की विकास प्रगति को देखने पर हम पाते है कि यह छोटे-छोटे सृजन का योग भी है। पहिए के आविष्कार से इंडस्ट्री 4.0 तक का सफर, प्रयासों के योगदान का परिणाम है। हर काल में मानव ने कुछ न कुछ सृजित किया तथा नए आविष्कारों, मूल्यों का निर्माण होता गया।

अत: हम पाते हैं विध्वंस से सृजन हो या विभिन्न सामूहिक क्रियाओं से सृजन सब में 'सक्रियता' का एक तत्व विद्यमान रहा है। मनुष्य भी सफल तभी हो पाता है जब वह अपने अंदर सक्रियता, तार्किकता को बनाए रखे क्योंकि उदासीनता से न तो विध्वंस होता है न ही सृजन और ना ही उसका कल्याण।

पाश के शब्दों में-

सबसे खतरनाक होता है मुर्दा शांति से भर जाना

तड़प का न होना

सब कुछ सहन कर जाना

घर से निकलना काम पर

और काम से लौटकर घर आना।

अत: हमें अपने अंदर के असंतोष को सही दिशा देने की जरूरत होती है चाहे वो विध्वंस के जरिए (विरोध) दे या कुछ नया निर्माण करके जिससे कि जो स्थान रिक्त है उसमें कुछ नई शुरूआत हो सके।

इस प्रकार हमने जाना कि प्राय: विध्वंस सृजन हो जन्म देता है यदि कुछ ध्वस्त होता है तो कुछ निर्माण भी होता ही है। मंजिल प्राप्ति के पथ पर आई बाधाओं का भी व्यक्तित्व निर्माण (सृजन) में महत्वपूर्ण योगदान रहता है।

शाम सूरज को ढलना सिखाती है,

शमा परवाने को जलना सिखाती है,

गिरने वाले को होती तो है तकलीफ पर,

ठोकर ही इंसान को चलना सिखाती है॥

❑❑❑

KHAN GLOBAL STUDIES
Kisan Cold Storage Campus, Musallahpur, Patna-6
KHAN SIR

4. मनुष्य वही है जो मनुष्य के लिए मरे

विचार लो कि मर्त्य हो न मृत्यु से डरो कभी,
मरो परन्तु यों मरो कि याद करे सभी।
यही पशु-प्रवृत्ति है तकि आप आप ही चरे,
वही मनुष्य है जो मनुष्य के लिए मरे।।

मैथिलीशरण गुप्त जी की उपर्युक्त पंक्तियां मनुष्य के मनुष्य होने की मूलभूत विशेषता की व्याख्या करती है। दया, परोपकार व दूसरों के लिए स्वयं को बलिदान करने की भावना के महत्व को ही गुप्त जी ने उपर्युक्त पंक्तियों के माध्यम से बताया है।

इस निबंध में हम परिप्रेक्ष्यों पर विचार करेंगे कि मनुष्य के लिए सबसे महत्वपूर्ण क्या है जो उसे मनुष्य बनाता है। अन्य जीवों से उसे कौन-सा तत्व भिन बनाता है। यदि मनुष्य में दूसरों के लिए मरने की भावना न हो तो क्या होगा इत्यादि।

सर्वप्रथम यह पक्ष विचारणीय है कि मनुष्य के लिए जो सबसे महत्वपूर्ण है वह है 'मानवता'। मानवता के आधार पर ही आज हर समाज, देश और विश्व टिका हुआ है। दया, करूणा, परोपकार ये उसी मानवता के विभिन्न रूप है। और यही मनुष्य के लिए सबसे महत्वपूर्ण है। रवीन्द्र नाथ टैगोर के शब्दों में-

''मानव तभी श्रेष्ठ है जब तक उसे मनुष्यत्व का दर्जा प्राप्त है। बतौर पशु, मानव किसी भी पशु से अधिक हीन है।''

उपर्युक्त संदर्भ में मनुष्य का अर्थ ही है मानवता के वास्तविक गुणों से विभूषित प्राणी। अर्थात् सच्चा मनुष्य वही है जिसमें अपने स्वार्थ को त्यागने की व जन कल्याण हेतु सर्वस्व न्यौछावर करने की भावना हो। इस तरह यही जनहित भावना समाज को बांधे रखती है और ऐसी भावना वाले ही मनुष्य महापुरूष बनते है। कबीर जी के ही शब्दों में-

''कबीरा खड़ा बाजार में, लिए लुकाटी हाथ
जो घर फूँके आपनो, चले हमारे साथ।।''

इसी संदर्भ में यह पक्ष भी विचारणीय है मनुष्य पशुओं से किस तरह भिन्न है। परोपकार और जनहित के प्रति कल्याण की भावना ही यह अन्तर स्थापित करती है। क्योंकि अपना पेट तो पशु भी भरते है सच्चा मनुष्य वही है जो दूसरो का पेट भरे अर्थात् उनके दुखों का निवारण करें। यह परहित की भावना है मानवता रूप का आधार है। तुलसीदास जी के शब्दों में-

''परहित सरिस धरम नहिं भाई।
परपीड़ा सम नहिं अद्यमाई।।''

हमने यह तो जान लिया कि दूसरों के लिए बलिदान की भावना व परोपकार ही मनुष्य को मनुष्य बनाते है अब हम इसके लाभ व प्रभाव प्रभाव पर गौर करेंगे।

यदि एक मनुष्य अपने स्वार्थ को त्याग करके दूसरों की भलाई हेतु कार्य करता है तो अन्य मनुष्य में यही भावना उत्पन्न होती है और दीर्घकाल में एक ऐसे वातावरण का निर्माण होता है कि सभी मनुष्य एक-दूसरे की सहायता हेतु तत्पर रहते हैं। जिस तरह किसान की खेती से सभी को भोजन प्राप्त होता है, जवान द्वारा की गई सुरक्षा से सम्पूर्ण समाज की भी सुरक्षा होती है। इस तरह परस्पर सहानुभूति व सद्भावना से समाज के प्रत्येक व्यक्ति को लाभ होता है। कन्फूशियस के अनुसार-

''जो व्यक्ति दूसरों की भलाई चाहता है, वह अपनी भलाई सुनिश्चित कर लेता है।''

इसी तरह का उदाहरण हम स्वतंत्रता संग्राम के समय भी देख सकते है। यदि स्वतंत्रता सेनानियों ने अपना स्वार्थ त्यागकर देश के लोगों की आजादी के लिए बलिदान नहीं दिया होता तो आज स्वतंत्र भारत का सपना भी साकार नहीं होता।

इसी तरह ईश्वरचंद्र विद्यासागर हो या विवेकानंद, महात्मा गांधी हो या सुभाष चन्द्र बोस, भगत सिंह हो या चंद्रशेखर आजाद, सिस्टर निवेदिता हो या मदर टेरेसा, एक चीज जो इन्हें मनुष्यता के महानतम स्तर पर पहुंचाकर महापुरुष बनाती वह है इनकी अपने स्वार्थ को त्यागते हुए दूसरों के लिए मर मिटने की भावना।

इसी तरह वैश्विक स्तर पर भी अब्राहम लिंकन, नेल्सन मंडेला जैसे महापुरुषों ने अपने स्वार्थ की आहुति देकर दूसरों की भलाई के लिए अपना सर्वस्व बलिदान कर दिया है। वास्तव यह बलिदान ही परम सुख है। विवेकानंद जी के अनुसार-

''जितना हम दूसरों की भलाई करते है; उतना ही हमारा हृदय शुद्ध होता है और उसमें ईश्वर निवास करता है।''

निष्कर्षत: हम कह सकते है मानवता का सार दूसरों के कल्याण की भावना रखने में ही है। बहुजन हिताय व बहुजन सुखाय की भावना रखते हुए मानस रक्षा हेतु अपने प्राण न्यौछावर कर देने वाला मनुष्य ही सच्चा मनुष्य है। गुप्त जी के ही शब्दों में-

''तभी समर्थ भाव है कि तारता हुआ तरे,
वही मनुष्य है कि जो मनुष्य के लिए मरे।।''

❑❑❑

5. विकास बनाम विस्थापना

मनुष्य एक विकासशील प्राणी है। विकास उसका जन्मजात स्वभाव है, उसकी प्रकृति है। यह विकास ही है जो मनुष्य के जीवन को अर्थ प्रदान करती है, सार्थकता देती है, औचित्य का निर्धारण करती है। कपि से आधुनिक मानव बनने के सफर का अध्ययन किया जाए तो साफ झलकता है कि मानव और विकास में पर्याय का संबंध है। विकास सदैव ही एक प्रकार का परिवर्तन होता है और हर परिवर्तन की एक कीमत होती है। इसलिये विकास के प्रत्येक चरण के साथ मनुष्य को उसकी कीमत तो चुकानी ही पड़ती है। अब यह मनुष्य पर ही निर्भर करता है कि विकास की कीमत कैसी चुकायी जाए, कहाँ चुकायी जाए? क्या विकास की इस कीमत को कम किया जा सकता है? और यदि हाँ तो कैसे? ये सवाल संपूर्ण मानव जाति के भविष्य को तय करेंगे।

वास्तव में आज हम जिस भौतिकवादी यांत्रिक विकास की ओर अग्रसर हैं, उसकी भारी कीमत जीवन के अनेक क्षेत्रों में चुका रहे हैं। विस्थापना भी इससे अभिन्न है। चाहे उद्योगों की स्थापना हो या बांधों का निर्माण या फिर नगरों का नियोजन हो या द्रुतगामी रेलों का संचालन - विस्थापना अनिवार्य सा लगता है। इतना ही नहीं, एक ओर हम वैश्वीकरण से कदमताल करते हुए आगे बढ़ रहे हैं, वहीं दूसरी और कर्मचारियों की लगातार छंटनी 'विस्थापित समाज' का निर्माण कर रही है। उदारीकरण 'विस्थापनवादी विकास' लाया है। यह अनिवार्य सेवानिवृत्ति का दौर है। सार्वजनिक उपक्रमों के हजारों कर्मचारी पुनर्वास को उम्मीदों में व्यथित हैं। राष्ट्र राज्य रोजी-रोटी के कर्तव्यबोध से पल्ला झाड़ चुका सा प्रतीत होता है। विकास बनाम विस्थापन के संघर्ष में गरीब की तकदीर ही बुलडोजर का शिकार होती है। विकास का बुलडोजर कहीं भी कमजोरों की हो हड्डियाँ-पसलियाँ तोड़ता है। किसी के लिये विकास का अर्थशास्त्र, किसी के लिये विनाश का समाजशास्त्र बन रहा है।

विस्थापन किसी एक कारण से नहीं होता है। कोई भी विकास परियोजना आये, उसके लिये सरकार द्वारा भूमि का अधिग्रहण किया जाता है और लोगों को अपना मूल स्थान छोड़कर विस्थापित होना पड़ता है। इस विडम्बनापूर्ण स्थिति को झेलना ही पड़ता है। चाहे जल विद्युत, सिंचाई और पेयजल के लिये बाँध का निर्माण हो, राष्ट्रीय उद्यान या अभ्यारण्य का निर्माण हो, सार्वजनिक या निजी कारखाने का निर्माण हो, नये नगर की स्थापना हो या फिर नई खदान का खनन हो। कई परियोजनाओं में तो भूमि का अधिग्रहण भी नहीं होता है तो भी भूमि उपयोग के तौर-तरीकों में व्यापक बदलाव आ जाता है। जिससे स्थानीय लोगों के जीवनयापन का ताना-बाना बिखर जाता है और अंततः धीरे-धीरे वे अन्यत्र पलायन करने को मजबूर हो जाते हैं। कई बार बड़ी सिंचाई परियोजनाओं के कारण विस्तृत क्षेत्र में लवणीकरण और दलदलीकरण का प्रसार हो जाता है। इसी प्रकार प्रदूषणकारी उद्योगों के कारण कई बार स्थानीय मृदा की संरचना में मौलिक परिवर्तन हो जाता है जिससे परंपरागत कृषि नष्ट हो जाती है। अनेक बार स्वास्थ्य पर अति गंभीर असर भी पड़ते हैं। ऐसी दशाओं में विस्थापन प्रत्यक्षतः नहीं होता है, किन्तु लोगों का जीवन 'रेंगती हुई मृत्यु' की भाँति हो जाता है।

यदि प्रादेशिक दृष्टिकोण से देखें तो विस्थापन की सर्वाधिक भार खनिज सम्पन्न, जल संपन्न, वन्य संपन्न क्षेत्रों में पड़ती है। ये आधुनिक सभ्यता से दूर पिछड़े आदिवासी क्षेत्र हैं। यहाँ इन संसाधनों के दोहन के लिये विस्थापन होता है। भारत में अधिकांश विस्थापन हिमाचल प्रदेश, झारखंड, उत्तरांचल, उड़ीसा, छत्तीसगढ़ तथा पूर्वोत्तर राज्यों में हुआ है।

योजना आयोग के अनुसार लगभग ढाई करोड़ लोग विस्थापन की पीड़ा झेल रहे हैं। गैर-सरकारी आंकड़ों के अनुसार ऐसे लोगों की संख्या चार करोड़ है। विस्थापित लोगों में सबसे अधिक संख्या जनजातीय समाज के लोगों का होता है, आंकड़े कहते हैं कि कुल विस्थापितों में इनका प्रतिशत 47 प्रतिशत है। यह समाज मानव जाति का सबसे संवेदनशील, सरल, संरक्षणीय एवं मौलिक हिस्सा है। इसे विस्थापन की बजाय संरक्षण की जरूरत है। इस समाज के लिये जल-जंगल-जमीन केवल आर्थिक कारक ही नहीं है, बल्कि इनकी संस्कृति, सामाजिक संबंध और उनकी पहचान का संपूर्ण ताना-बाना इन कारकों के आसपास ही घूमता है। जिस जल को पीकर वे पले होते हैं, जिस जंगल के पेड़ों के साथ थे बड़े होते हैं और जिस जमीन को सौंधी खुशबू में वे बसे होते हैं; उन्हीं से अलग होकर वे कटी पतंग की भाँति हो जाते हैं, जिसकी परिणति दूसरों के हाथों लुटना होता है। ये कटु सत्य सिर्फ जनजातीय समाज के लिये ही नहीं है वरन् संपूर्ण विस्थापित समुदाय के लिये भी है।

विस्थापन के दुष्परिणाम सदैव ही बहुआयामी रहे हैं। सरकार का अधिकांश ध्यान सिर्फ वित्तीय आर्थिक क्षतिपूर्ति पर होता है। मुआवजे की राशि दे दना पर्याप्त नहीं होता, उस राशि से व्यवस्थित आजीविका तक पहुंचना सीधे-साधे विस्थापित लोगों के लिये बहुत कठिन हो जाता है थे तो अपने परिवेश में मौजूद संसाधनों से जीवन जीने के आदि होते हैं। उन्हें इकट्ठा 5-10 लाख रुपये दे देने से भी उसका वे सही उपयोग नहीं कर पाते, बल्कि गलत आदतों में उसका अपव्यय कर डालते हैं। दो-चार साल तक वे शराब के नशे और जुझे की मस्ती में मस्त रहते हैं, जब नींद खुलती है, तब तक देर हो चुकी होती है। इसके बाद उनके हाथ में न तो पैतृक परिसंपत्ति होती है और न ही मुआवजे की राशि।

वित्तीय रूप में मुआवजे की राशि निर्धारित करने की प्रविधियों में भी विसंगतियाँ है मुआवजा निर्धारण रजिस्ट्री दरों के औसत पर आधारित होता है। साथ ही सर्वविदित ही है कि रजिस्ट्री शुल्क बचाने एवं काले धन छुपाने के लिये रजिस्ट्री में जमीन की कीमत कम बताई जाती है। यह प्रवृत्ति पूर्णत: गलत है। सरकार को इससे राजस्व हानि भी होती है। लेकिन इसके आधार पर दर निर्धारण करना विस्थापितों के प्रति अन्याय ही है।

इन सबके अतिरिक्त भूमि अधिग्रहण की प्रक्रिया इतनी जटिल है कि अनेक बार प्रक्रिया तो चलती रहती है, मगर भूमि पहले ही परियोजना हेतु उपयोग कर ली जाती है। प्रक्रिया लबित होने के कारण मुआवजे की राशि भी लंबित रहती है। साथ ही विडम्बनापूर्ण है कि एक बार परियोजना शुरू हो जाने के बाद शासन-प्रशासन मुआवजा दिलवाने में वह तत्परता नहीं दिखाते जो भूमि अधिग्रहण में देखी जाती है। मुआवजे की राशि अनेक बार वितरण हेतु प्रशासन के पास आ जाती है, तब उसका समय पर वितरण नहीं किया जाता। साथ ही यह भी उल्लेखनीय है कि विस्थापित व्यक्ति को मुआवजे की राशि पर बाद में कोई व्याज भी नहीं मिलता।

वास्तव में अधिग्रहण की प्रक्रिया राज्य की सम्प्रभु शक्ति के अंतर्गत है, इसलिये राज्य द्वारा अधिग्रहण सब पर आबद्धकारी है। लेकिन राज्य सम्प्रभु सत्ता के साथ-साथ कल्याणकारी राज्य भी है। इसलिये प्रशासन से सदैव संवेदनशीलता अपेक्षित है। परन्तु अनेकों बार इसका अभाव देखा जाता है।

जब वनांचल का एक आदिवासी विस्थापित होता है तो उसे इसके मालिकाना हक की भूमि का तो मुआवजा दे दिया। जाता है, किन्तु क्या उसे तेंदुपत्ता, महुआ, चार- चिरौंजी, लाख, ईमली का मुआवजा दिया जाता है? अगर नहीं तो क्या उस गरीब आदिवासी का जीवन वनांचल के इन प्राकृतिक संसाधनों पर निर्भर नहीं था? ये सवाल पुनर्वास नीति के अंग क्यों नहीं बनते? इसी तरह भूमिहीन श्रमिकों, बटाईदार कृषकों, दस्तकारों, शिल्पकारों आदि के मुद्दे पुनर्वास नीति के मुद्दे को और भी जटिल बना देते हैं। किसी वस्तु का मुआवजा देने के लिये कानूनी मालिकाने हक की अनिवार्यता को दृढ़ प्रतिमान के रूप में प्रयुक्त नहीं किया जा सकता। लेकिन इस संबंध में वर्तमान में किसी तरह का कोई प्रावधान नहीं है।

विस्थापन से जुड़ी सामाजिक-सांस्कृतिक समस्या और भी गंभीर है। एक विस्थापित व्यक्ति के लिये यह ठीक उसी प्रकार है जैसे किसी बड़े फलदार वृक्ष को एक जगह से उखाड़कर किसी दूसरी जगह लगा देना। सर्वाधिक गंभीर पहलू मनोवैज्ञानिक दुष्परिणाम है, विशेषत: वृद्धजनों तथा बच्चों पर यह स्पष्टत: देखा जा सकता है। एक व्यक्ति जो अपने जीवन के धूप और छाँव, सुबह और शाम, बसन्त और सावन को अपने पूर्वजों की मिट्टी में गुजारा हो, उसे जीवन की अंतिम बेला में पूर्वजों की मिट्टी से चित कर देना बहुत ही मार्मिक एवं पीड़ादायक है। प्रत्येक व्यक्ति को अपने पैतृक जल-जमीन से गहरा भावनात्मक जुड़ाव / लगाव होता है। यह लगाव इस कदर होता है कि व्यक्ति अंत में उसी खाक में मिलना भी चाहता है। इन सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक पहलुओं को समझना बढ़ा ही कठिन है और इनका पुनर्वास असंभव ही है।

कभी-कभी लगता है कि भारत अजीब देश है। यहाँ मतदाताओं से खारिज हो चुके विधायक और सांसद तो पेंशन पा जाते हैं लेकिन विकास की कीमत चुकाने के लिये विस्थापित गरीब उजड़ते रहते हैं। उनकी कोई सुनवाई नहीं होती। हमें यह समझना होगा कि विकास का मतलब सिर्फ सकल राष्ट्रीय आय ही नहीं होता। सेंसेक्स के पाँच अकीय हो जाने मात्र से विकास नहीं हो जाता। सड़कों की लंबाई और बांधों की ऊँचाई मात्र से विकास नहीं होता। राष्ट्र की सारी संस्थाएँ मानव केन्द्रित हैं। मनुष्य की सुख समृद्धि, स्वतंत्रता, समता और आनंद में वृद्धि ही सबका लक्ष्य है। आम आदमी का जीवन सुखमय बने, वह संतुष्ट रहे यही विकास का असली पैमाना है।

विकास, विस्थापन और पुनर्वास के ढेर सारे प्रश्नों और उलझनों के बीच मानव से इतर जड़ तथा चेतन के विस्थापन तथा उसके परिणामों का प्रश्न शुरू हो जाता है। मनुष्य इतना स्वार्थी हो चला है कि यह विकास भी स्वयं के लिये चाहता है और पुनर्वास भी स्वयं मात्र के लिये हो। हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि एक विशाल बाँध के पीछे विशाल जलाशय में मनुष्य डूबने से तो बच जाता है, क्योंकि विस्थापित होता है। लेकिन हजारों अन्य जीव-जन्तु पादप-प्राणी तथा जद तत्वों का अस्तित्व सदैव के लिये समाप्त हो जाता है। उन्हें पीड़ादायक विस्थापन भी नसीब नहीं होता है। वे इस लोक से ही विस्थापित हो जाते हैं। अन्य शब्दों में विलुप्त हो जाते हैं।

प्रश्न उठता है कि क्या मानवेतर जगत को कोई अधिकार नहीं है? क्या ये हमारे जीवन के तंत्र नहीं है? क्या मनुष्य इनके बिना चल सकता है? क्या यह सच नहीं है कि यही मानवेतर जगात हो मनुष्य का संसाधन है? तो फिर क्यों विकास की नीतियों में इनकी अनदेखी की जाती है? इनके विस्थापन का मुद्दा क्यों पर्दे के पीछे चल जाता है? क्या मानव पूर्णत: संवेदनशील हो गया है?

वास्तव में व्यावहारिक बुद्धि की बात करने वाले नियोजनकर्ता इस सृष्टि की मूल संरचना को समझ पाने में अब तक असफल रहे हैं। यह ब्रह्माण्ड जिसे अंग्रेजी में 'यूनीवर्स' (Universe) कहते हैं, एक हो धागे में पिरोया गया है। 'यूनी' का अर्थ होता है 'एक' और 'वर्स' का आशय है 'छंद'। अन्य शब्दों में यह संपूर्ण सृष्टि एक छंद है, एक राग है, एक कविता है, एक तान है, एक गान है। जिस प्रकार एक सुंदर हार में सभी मोहक फूल तो दिखाई देते हैं, किन्तु वह धागा नहीं दिखता। जो सभी फूलों को एक साथ पिरो कर रखता है। इसी प्रकार हमें प्रकृति की जीवनदायी विविधता तो नजर आती है किन्तु वह सूत्र दृष्टिगोचर नहीं होता जो संपूर्ण सृष्टि को एकता दिये हुए है। मनुष्य उसी सूत्र को पहचानने में विफल रहा है, तभी तो स्वयं के विकास के खातिर शेष प्राकृतिक जगत का विनाश कर रहा है।

हम बड़े-बड़े बाँध बना सकते हैं, विशाल कारखाने लगा सकते हैं, सुंदर नगर बसा सकते हैं, लेकिन हमें याद रखना चाहिए कि यदि सृष्टि का एक भी जीव विलुप्त हो जाये तो पुन: उसे इस प्रकृति पर नहीं ला सकते हैं। हमें विकास संबंधी अपने संपूर्ण मनोवृत्ति पर पुनर्विचार करना होगा।

तो फिर रास्ता क्या बचा है? क्या विकास को त्याग दिया जाये? बहुत हो चुका विकास अब और नहीं क्या यही एकमात्र विकल्प बचा है? क्या विकास से मुँह मोड़ना ही उपाय है?

विकास से मुँह मोड़ना संभव नहीं है। विकास की आवश्यकता आज कहीं अधिक है, क्योंकि आज जनसंख्या में अपार वृद्धि हुई है। वैश्विक जनसंख्या 6 अरब की सीमा को पार कर चुकी है, वहीं भारत की जनसंख्या 1 अरब की सीमा को ऊँची जनसंख्या वृद्धि दर भविष्य के लिये अन्य चुनौती है। इसके अतिरिक्त आज मानवीय आवश्यकताओं का अंतहीन विस्तार हुआ है। बिजली, पानी, सड़क, आवास, शिक्षा, स्वास्थ्य जैसी बुनियादी जरूरतों की पूर्ति हेतु भारी निवेश की दरकार है। देश को खाद्यान्न सुरक्षा एवं करोड़ों किसानों के आर्थिक सशक्तिकरण के लिये कृषि व्यवस्था का तकनीकी उन्नयन भी अनिवार्य है। आज खुली वैश्विक प्रतिस्पद्धों का युग है। यदि कोई राष्ट्र सैटेलाईट प्रौद्योगिकी, नैनो प्रौद्योगिकी, नाभिकीय सत्ता, सामरिक तकनीक आदि की दृष्टि से सशक्त नहीं है तो वैश्विक धरातल पर उसकी कोई पूछ नहीं होगी। यदि भारत जैसे राष्ट्र तीसरी दुनिया के देशों के हितों की सुरक्षा करना भी चाहते हैं तो पहले स्वयं को मानव संसाधन, तकनीकी और अन्य आर्थिक पैमानों पर सशक्त बनना पड़ेगा।

इन चुनौतियों की दृष्टि से भारी निवेश चाहिए, तकनीक चाहिए, अनुसंधान एवं विकास (R & D) चाहिए। इन सबके लिये जरूरी है तीव्र विकास तीव्र विकास से मिलने वाले लाभ से ही हम इन चुनौतियों का सामना कर सकते हैं। साथ ही विकास के लाभों से ही हम प्रभावी पुनर्वास के कदमों को असली जामा पहना सकते हैं। एक ओर जहाँ कहा जाता है कि विकास हो विस्थापन लाता है, वहीं दूसरी ओर एक स्तर तक यह भी सच है कि विकास ही विस्थापितों के प्रभावी पुनर्वास को संभव बनाने के लिये संसाधन उपलब्ध करवा सकता है।

इसलिये वृहद् स्तरीय विकास के महत्व को नकारा नहीं जा सकता। मगर जब भी वृहद् स्तरीय विकास की प्रक्रिया में विस्थापन हो तो उसका प्रभावी पुनर्वास भी अनिवार्यत: होना चाहिए। अनेकों के विकास के लिये कुछ को विस्थापित तो किया जा सकता है, परन्तु प्रभावी पुनर्वास के बिना नहीं देश में चल रही विस्थापनकारी परियोजनाओं के विरोध का मुख्य कारण है प्रभावी पुनर्वास का न होना।

अब विस्थापित लोग स्वयं को ठगा हुआ महसूस करते हैं, वहीं से विरोध शुरू होता है। हाल ही में उड़ीसा के कलिंग नगर में एक स्टील प्लांट की स्थापना के लिये भूमि अधिग्रहित किया गया था। विस्थापित जनजातीय लोगों ने अपनी मांगों के लिये आवाज उठाई तो उन्हें पुलिस की गोली खानी पड़ी। SEZ अधिनियम की विसंगतियाँ नन्दीग्राम, सिंगूर, जगतसिंह पुर, मुदरा आदि की घटनाओं के रूप में सामने आयीं।

शासन-प्रशासन जब भी संवेदनशीलता का परिचय देगा, विरोध बढ़ेगा रोष पनपेगा। नोबेल पुरस्कार विजेता वी. एस. नागपाल ने अपनी पुस्तक 'इण्डिया : ए मिलियन क्यूटिनीज नाऊ' में लिखा है- ''आज भारत लाखों छोटे-छोटे विद्रोहों का देश बन चुका है। उन विद्रोहों को नहीं दबाया जा सकता। ये नये रास्ते की शुरुआत तथा भारत के विकास के अंश हैं।''

विकास हेतु किसी एक मॉडल के सहारे नहीं चला जा सकता। वृहद् स्तरीय विकास की तमाम आवश्यकताओं के बावजूद इसकी सीमायें भी अनगिनत हैं। वृहद् स्तरीय परियोजनाओं के साथ-साथ लघु स्तरीय परियोजनाओं को अधिकाधिक महत्व देना होगा।

महत्वपूर्ण सहायक विकल्प के रूप में लघु स्तरीय परियोजनाओं को अपनाना होगा। अब लगातार कहा जाने लगा है-

''लघु ही ललित है।''

"Small is beautiful."

"Small is ltimate."

लघु स्तरीय परियोजनाओं द्वारा ही विकास के केन्द्र में मानव और परिस्थितिकी दोनों को स्थापित किया जा सकता है। ये रोजगार के अवसर भी प्रदान करती हैं और पर्यावरणीय दृष्टि से भी अनुकूल होती हैं। ये स्थानीय समस्याओं का समाधान स्थानीय तकनीक तथा स्थानीय सहभागिता द्वारा करती हैं। इसलिए लघुस्तरीय परियोजनाओं को अधि काधिक वरीयता देनी है और आवश्यकतानुसार विकल्प न होने पर बृहद् परियोजनाओं को भी अपनाना पड़ेगा। लेकिन इस स्थिति में सदैव पुनर्वास पर ध्यान देना पड़ेगा।

लेकिन यह आश्चर्यजनक है कि आज तक हमने कोई प्रभावी राष्ट्रीय पुनर्वास नीति भी नहीं बनाई है। लगभग सभी समस्याओं के लिये राष्ट्रीय नीति बनीं, परन्तु विस्थापन के संबंध में नहीं। अत: पहली आवश्यकता है कि व्यापक विचार-विमर्श के पश्चात् यथाशीघ्र एक ठोस, स्पष्ट तथा प्रभावी राष्ट्रीय विस्थापन नीति का निर्माण किया जाये पुनर्वास नीति के बारे में सरकार द्वारा 1993 में एवं पुन: 1998 में एक योजना तैयार की गई थी। 1999 में केन्द्रीय सरकार ने एक राष्ट्रीय सेमिनार भी आयोजित किया था। वर्ष 2004 में सरकार ने विस्थापितों के लिये पुनर्वास नीति की घोषणा भी की। किन्तु इन सबको अपनी विसंगतियाँ हैं। अत: कामचलाऊ प्रयासों के बदले ठोस एवं प्रभावी कदम की सख्त दरकार है।

एक व्यापक तथा ठोस राष्ट्रीय विस्थापन एवं पुनर्वास नीति के साथ ही एक स्वतंत्र तथा वैधानिक राष्ट्रीय विस्थापन तथा पुनर्वास आयोग का गठन किया जाना चाहिए। इस आयोग को विस्थापन तथा पुनर्वास के सभी मामलों के अध्ययन, प्रभावों की जाँच तथा पुनर्वास

संबंधी रणनीत के विषय में सिफारिश करने का अधिकार होगा। इन सिफारिशों के क्रियान्वयन की दृष्टि से श्राष्ट्रीय विस्थापन तथा पुनर्वास प्राधिकरणश का गठन होना चाहिए, जिसकी अध्यक्षता स्वयं प्रधानमंत्री को करनी चाहिए।

संसाधनों की कमी को दूर करने के लिये एक श्राष्ट्रीय पुनर्वास कोषश भी बनाया जाना चाहिए। विस्थापित लोगों को रियायती दर पर ऋण प्रदान करने के लिये एक श्राष्ट्रीय पुनर्वास वित्त व विकास निगम का भी गठन किया जाना चाहिए। रोजगार मुहैया कराने संबंधी पैकेज व्यवस्था भी होनी चाहिए ताकि विस्थापित लोग शीघ्र हो स्थायी आजीविका प्राप्त कर लें। पुनर्वास योजनाओं में प्रशासनिक देरी असंवेदनशीलता, अकर्मण्यता, भ्रष्टाचार आदि की शिकायतें होती रहती हैं। इनके प्रभावी निदान के लिये राष्ट्रीय आयोग के अंतर्गत ही एक विशेष सेल की भी स्थापना की जानी चाहिए ताकि पुनर्वास कार्य को प्रतिबद्धतापूर्वक पूरा किया जा सके।

नर्मदा पुनर्वास के अंतर्गत यह देखा गया कि रहने की जगह जहाँ दी गई. कृषि भूमि उससे 50 कि.मी. दूर प्रदान की गई। फलतः विस्थापितों का मन नई जगह में नहीं रमा। ऐसा होना स्वाभाविक भी था। अतः पुनर्वास का प्रत्येक कार्यक्रम व्यावहारिक तथा सरल होना चाहिए और लोगों की पहुंच में होना चाहिए। शिक्षा, स्वास्थ्य, संचार, पेयजल, सुरक्षा, मनोरंजन आदि तमाम सुविधाएँ लाभार्थियों के इर्द-गिर्द ही होनी चाहिए। पुनर्वास की सफलता और विफलता के विषय में फीडबै व्यवस्था होनी चाहिए। पुनर्वास संबंधी सभी योजनाओं का सामाजिक अंकेक्षण (Social Auditing) भी अनिवार्य बनाया जा चाहिए।

हमारे देश में जितनी जनसंख्या विकलांगों की है, उससे अधिक जनसंख्या विथापितों की है। जहाँ विकलांगों के लिये विभिन्न संवैधानिक वैधानिक प्रावधान हैं, अनेक योजनाएँ चल रही हैं, वहीं विस्थापितों के लिये ऐसा कुछ नहीं; जो कि होना चाहिए, क्योंकि विस्थापित भी एक तरह से विकलांग ही होते हैं, जब तक उनका संपूर्ण पुनर्वास न हो जाए।

अतः विकास तो होना चाहिए और हर हाल में होना चाहिए। यह प्रकृति का शाश्वत नियम है। साथ ही यह मनुष्य का शाश्वत स्वभाव भी है। किन्तु सतत् विकास को अपनाया जाना चाहिए, लाभों के समानतापूर्ण वितरणमूलक विकास को ग्रहण किया जाना चाहिए एवं विस्थापन रहित विकास को प्राथमिकता दी जानी चाहिए। विस्थापन की स्थिति में विकास के साथ-साथ मानवीय चेहरे से युक्त पुनर्वास भी होना चाहिए।

इसलिये भारत सरकार एवं राज्य सरकारों की सभी कल्याणकारी योजनाओं में B.P.L. की तरह विस्थापित व्यक्तियों को भी लाभार्थी के रूप में दर्जा दिया जाना चाहिए।

निश्चित रूप से विकास तथा विस्थापन का कोई सहकारी संबंध नहीं है और न ही अनिवार्य संबंध है। इनमें कारण-कार्य का भी संबंध नहीं है। ये एक-दूसरे के पर्याय भी नहीं हैं। हमारे पास विकल्प सिर्फ एक ही है- सतत् विकास। जो सुखी, समृद्ध, सम्पन्न, समतामूलक, सहयोगी तथा संतुष्ट समाज का निर्माण करेगा। विकास तथा विस्थापन के द्वंद्व की स्थिति में भी हमारे पास सीमित विकल्प ही हैं। प्रथमतः विकास जो बिना विस्थापन के हो। द्वितीयतः विकास जो न्यूनतम विस्थापन, किन्तु महत्तम संतुष्टिदायक पुनर्वास के साथ हो। हमें आगे बढ़ना है, दूर तक जाना है; विकास के सोपानों को तय करते हुए सुन्दर, स्वस्थ, सबल तथा सौन्दर्यपूर्ण समाज का निर्माण करना है। अतः प्रथम विकल्प को प्राथमिकता देंगे तथा दूसरे विकल्प को अंतिम विकल्प के रूप में अपनाना है और विकास को निरंतर जारी रखना है।

❑❑❑

KHAN GLOBAL STUDIES
Kisan Cold Storage Campus, Musallahpur, Patna
KHAN SIR

6. भारतीय लोकतंत्र : क्या खोया? क्या पाया?

इस वर्ष हम अपनी आजादी की हीरक जयंती मनाने जा रहे हैं। यह वर्ष सिर्फ हमारी स्वाधीनता की 60वीं वर्षगांठ न होगी, वरन् हमारी लोकतांत्रिक प्रणाली की भी हीरक जयंती होगी। आज से लगभग छः दशक पहले हमने एक व्यवस्था, एक समाज तथा एक जीवन पद्धति के रूप में लोकतंत्र को ग्रहण किया था, जो कहीं-न-कहाँ ऋग्वैदिक काल से ही हमारी नसों में दौड़ रहा था। एक राष्ट्र राज्य के लिये छः दशक का समय बहुत अधिक नहीं होता है, एक व्यवस्था के लिये 60 वर्ष का कालखण्ड बहुत ज्यादा नहीं होता है और न ही एक समेकित समाज के लिये यह समयावधि बहुत अधिक होता है; फिर भी इतना समय पर्याप्त होता है अंदर झांकने के लिये।

क्या हमारे पास ऐसी उपलब्धियाँ है कि हम हीरक जयंती का जश्न मना सके? क्या हमने गाँधीजी के सामाजिक नैतिक लोकतंत्र को पा लिया है? क्या नेहरू के आर्थिक लोकतंत्र का सपना साकार हुआ है? क्या हम समाजवादी समाज की स्थापना में सफल हो पाये हैं? भय-भूख एवं भ्रष्टाचार से मुक्त समाज का निर्माण कहाँ तक हो पाया है? सपनों का भारत कितना साकारित हुआ है?

- भारतीय लोकतंत्र को यदि सफल बनाना है तो इन प्रश्नों से हमें टकराना ही होगा।

सामान्य रूप से मानवीय स्वभाव असंतोष का होता है। लोगों की पहली नजर नकारात्मक तत्वों पर पड़ती है। इसलिये हमारे विश्लेषण का प्रारंभिक मुद्दा **''क्या खोया?''** पर केन्द्रित रहेगा। चाहे लोकतंत्र राजनीतिक प्रणाली के रूप में हो, आर्थिक मोर्चे पर हो या सामाजिक लोकतंत्र को दृष्टि से विफलताओं की कहानी हो।

पंडित नेहरू ने कहा था- **''हम लोकतंत्र को एक राजनीतिक प्रणाली के रूप में अपना रहे हैं जिसके माध्यम से सामाजिक, आर्थिक तथा नैतिक लोकतंत्र को हासिल करेंगे।''**

इसलिये पहला विश्लेषण राजनीतिक मोर्चे पर करते हैं। आज एक राजनीतिक प्रणाली के रूप में हम स्वयं को ठगा हुआ महसूस कर रहे हैं। राजनीतिक दल मुनाफाखोर कंपनियाँ बन गई हैं। राजनीति व्यापार बन गई है, आजीविका का साथ न बन गई है; जिसे कहीं कोई काम नहीं मिला, सेवा के नाम पर राजनीति में जुट गया।

हर बढ़ा दल वंशवाद एवं व्यक्ति पूजा के सहारे ही चल रहा है। लोकतंत्र का डंका पीटने वाले राजनीतिक दलों में आंतरिक लोकतंत्र मृतप्राय हो चुका है। परिवारवाद को अब तक समझा जाने लगा है। जनता में इसकी मंजूरी देकर नेताओं का हौसला बढ़ाया है। जिस गति से और जिस मात्रा में हमारे देश में नेताओं की फसल लहलहा रही है और जिस तरह से पूरे के पूरे परिवार इस खेती में लगे हुए हैं, उसे देखते हुए तो यही लगता है कि राजनीति एक पेशा ही नहीं, एक पारिवारिक पेशा बन गया है और इस पेशे में कुशलता का प्रमाण यही है कि आपके पिता या चाचा या भाई या कोई अन्य संबंधी राजनीति के कितने कुशल खिलाड़ी रहे हैं।

राजनीतिक दलों में अध्यक्ष का चुनाव हो, या कोषाध्यक्ष का बैठक होती है, विधायकों की सभाएँ होती है, विचार होता है, विमर्श किया जाता है; परन्तु निर्णय के लिये हाई कमान की ओर टकटकी लगाकर देखा जाता है। हाई कमान का निर्णय पत्थर की लकीर बन जाता है। विरोध करेंगे तो अनुशासनात्मक कार्यवाही होगी; निष्कासन या निलंबन होगा।

चुनाव में टिकट उसे मिलता है जिसकी पैरवी होती है या फिर जिसके पास धन-बल होता है या बाहुबल होता है। चुनाव जीतते भी यही लोग हैं। लोकसभा के वर्तमान प्रतिनिधियों में छः में से एक यानि लगभग 98 का गज पर लंबा आपराधिक रिकार्ड है। 81 लोकसभा सीट वाले राज्य उत्तर प्रदेश में चार में से एक लोकसभा सदस्य को उनके आपराधिक रिकार्ड के बावजूद निर्वाचित किया गया है। जो यहाँ भी हार जाते हैं, राज्यसभा के पिछले दरवाजे से सांसद बन जाते है। राज्यों के स्तर पर स्थिति और भी दयनीय है। इतना ही नहीं, मंत्री वही बनते हैं जो सबसे वादा सौदेबाजी करने में समर्थ होते हैं जो बच जाते हैं, उन्हें चुपके से कहीं लाभ का पद दे दिया जाता है, कम्बल ओढ़कर भी पीने की छूट दे दी जाती है।

चाहे संसद में सवाल पूछने के लिये रिश्वत लेने का प्रश्न हो या हाल ही में लाभ के पद को लेकर उठा विवाद हो, अनेक बार हमारी राजनीतिक प्रणाली का खोखलापन उजागर हुआ है। सत्ता के लिये कभी साम्प्रदायिकता का कार्ड खेला जाता है तो कभी आरक्षण का पत्ता फेंका जाता है। यही कारण है कि आज एक आम भारतीय कहता हुआ सुना जा सकता है कि एक बार एक नाग ने एक नेता को डस लिया तब नाग तो मर गया पर नेताजी को कुछ नहीं हुआ। पूरे राजनीतिक परिदृश्य में एक बुद्धिजीवी, संवेदनशील तथा कर्तव्यनिष्ठ भारतीय नागरिक के लिये कहीं कोई जगह नहीं दिखाई दे रही है।

लोकतंत्र के हृदय स्थल संसद और विधानमण्डलों में सार्थक बहस कम और निरर्थक नारेबाजी अधिक होती है। इसी का नतीजा है कि जैसे ही दूरदर्शन पर संसद समाचार आना शुरू होता है, लोग चैनल बदल देते हैं। विपक्ष सत्तापक्ष के हरेक काम का विरोध करते हैं और वे ऐसा सिर्फ इसलिये करते हैं क्योंकि वे विपक्ष है, विरोध हो उनका एकमात्र व अंतिम धर्म है। रचनात्मक विरोध तथा सकारात्मक सहयोग का तत्व समाप्तप्राय सा हो गया है, शेष बच्चा रह गया है विरोध, विरोध और सिर्फ विरोध।

लोकतंत्र में मतभेदों को अच्छा माना जाता है। मतभेद लोकतंत्र को स्वस्थ बनाने के लिये आवश्यक ही है। किन्तु हमारी राजनीतिक प्रणाली मतभेद को पीछे छोड़कर मनभेद तक पहुंच गई है। सत्ता में आते ही विपक्षी दल को परेशान करने के विभिन्न हथकण्डे अपनाये जाते हैं। लोकतंत्र में कई बार सर्वसम्मति सिर्फ उन्हीं मामलों में दिखती है यहाँ सांसदों-विधायकों का व्यक्तिगत स्वार्थ निहित हो।

''क्या खोया?'' के क्रम में आर्थिक आयाम पर दृष्टिपात करते हैं, क्योंकि आर्थिक लोकतंत्र के बिना राजनीतिक लोकतंत्र अधूरा है। यदि आंध्रप्रदेश, महाराष्ट्र में किसान आत्महत्या करते हों, कालाहांडी, कोरापुट और बोलांगगिर में लोग भूख से मरते हों, उत्तरप्रदेश में अपने हकों की मांग करने के कारण मजदूरों को लाठी खानी पड़े, कलिंग नगर के विस्थापितों को पुलिस की गोली खानी पड़े तो व्यवस्था पर प्रश्नचिह्न उठना स्वाभाविक ही है। एक ओर संपत्ति रिपोर्ट 2005 के अनुसार देश में 7000 करोड़पति हैं। इनकी संख्या लगातार बढ़ रही है, दूसरी ओर योजना आयोग के आंकड़े कहते हैं कि आज भी देश को 20 प्रतिशत आबादी प्रतिदिन अमेरिकी डॉलर भी नहीं कमा पाती। इसी देश में एक और हैदराबाद, बंगलौर, अहमदावार, चंडीगढ़ की चमक-दमक है, यहीं दूरी ओर इसी देश में डांग, बस्तर, पलामू और कालाहांडी का अंधेरा भी है। दक्षिण-पश्चिम बनाम उत्तर-पूर्व का विभाजन दिन-ब-दिन चौड़ा ही होता जा रहा है।

उदारीकरण के बाद समृद्धि का नया दौर शुरू हुआ है, किन्तु यह सम्पन्नता कुछ हाथों में ही सिमट कर रह गई है। इस नवीन समृद्धि सम्पन्नता का समान वितरण नहीं हो रहा है। क्षेत्रीय दृष्टि से विकास द्वीपों अर्थात् महानगरों को हो नई-नवेली समृद्धि हाथ लग रही है, वहीं वर्गीय दृष्टि से समाज का उच्च उपभोक्तावादी वर्ग तथा शहरी मध्य वर्ग ही मौज कर रहा है।

वैश्वीकरण के इस युग में विकास के नये द्वार खुले हैं। रोजगार पाने के नये अवसर सामने आये हैं, पैसा कमाने के नवीन साधन उपलब्ध हैं; किन्तु यह सब उन्हीं को मिल रहा है जो पहले से ही शिक्षित, सम्पन्न, सशक्त व सुदृढ़ हैं; अभी भी समाज के असक्त, अशिक्षित, विपन्न व कमजोर वर्ग के लिये वैश्वीकरण के लाभ नगण्य ही हैं। शेयर बाजार की उछाल हो या फैशन की नई बहार, कॉल सेंटरों की धमक हो या सॉफ्टवेयर (Software) की फुहार, पत्रकारिता का प्रसार हो या मल्टीमीडिया की ऊँची छलांग, बहुराष्ट्रीय कंपनियों की (MNC) की गरमाहट हो या एन.आर.आई. (NRI) बनने का सौभाग्य इन सभी क्षेत्रों की भलाई समाज का एक विशेष वर्ग ही खा रहा है।

प्रतियोगिता, आर्थिक दक्षता तथा वित्त की उत्पादकता जैसे कठोर अर्थशास्त्रीय नियमों को लागू किया जा रहा है। इसके चलते सरकारी नौकरियाँ लगातार कम की जा रही हैं, सार्वजनिक क्षेत्र में कर्मचारियों की छंटनी जारी है, सब्सिडी 'घटायी' जा रही है, पेंशन का सरकारी बोझ कम किया जा रहा है - कुछ मिलाकर व्यक्ति को बाजार के हवाले किया जा रहा है।

यद्यपि ये सारे कदम आर्थिक सुधारों की दृष्टि से उचित हैं, किन्तु बिना सुदृढ़ सामाजिक सुरक्षा तंत्र के ये सारे कदम अनुचित ही हैं। इस संबंध में पश्चिमी राष्ट्रों का उदाहरण दिया जाता है, किन्तु ऐसा तर्क देने वाले अर्थशास्त्री पश्चिम राष्ट्रों की पुख्ता सामाजिक सुरक्षा तंत्र तथा सामाजिक ताना-बाना की अनदेखी करते हैं। हमेशा याद रखना होगा- 'अर्थ' को सुदृढ़ करने के प्रयास में 'समाज' का सत्यानाश नहीं किया जा सकता है। 'अर्थ' साधनमात्र है, साध्य तो 'समाज' ही है।

महानगरों की चमक-दमक के पीछे एक स्याह चेहरा भी छिपा है यह चेहरा रात के अंधेरे में प्रकट होता है। नगर के फुटपाथों पर दिखता है, बंद दुकानों के बरामदों में दिखता है, और दिखता है रेलवे स्टेशन और बस अड्डों में लोग यहाँ जाड़े की सर्द रातों में पाँवों से पेट ढकने की कोशिश करते नजर आते हैं। इनमें से कुछ भीख मांगने वाले हैं, कुछ रिक्शा चालक हैं, कुछ दिहाड़ी मजदूर हैं जो दिन भर की मेहनत के बाद रात भी आँखों में ही काट देते हैं। सोडियम लाईट की स्वर्णिम रोशनी में नहाती सड़कों के किनारे ठंड से दांत किटकिटाते बच्चे और उन्हें गर्माहट देने को नाकाम कोशिश करती माताएँ बताती हैं कि कुछ हिन्दुस्तान फुटपाथ पर भी आबाद है। भारत बनाम इंडिया का विभाजन इतना गहरा शायद ही पहले कभी था। इधर डिजिटल क्रांति (Digital Revolution) ने एक नये डिवाइड को जन्म दिया है- डिजिटल डिवाइड।

इण्डिया और भारत के इस डिवाइड ने अब अनेक अन्य विसंगतियों को पैदा किया है। डिवाइड डिवाइड के इस क्रम में एक ओर अबूझमाड़ जैसे क्षेत्र वहीं रह गये, अन्य क्षेत्र आगे निकल गये। विषमता के अनेक प्रकार उभरकर सामने आये वर्गीय विषमता, क्षेत्रीय विषमता न जाने क्या-क्या? यहाँ कहीं से नक्सलवाद जैसी प्रवृत्तियाँ भी

पनपी जो आज भारत के सामने आतंकवाद से भी बड़ी चुनौती है। आज तो रेड कोरिडोर की बात लगातार की जा रही है।

जब तक विकास का न्यायपूर्ण समतामूलक वितरण नहीं होगा, नक्सलवाद जैसी समस्याओं को बंदूक की नली सामने दिखाकर ही नहीं रोका जा सकता।

आर्थिक विफलताओं की गाथा के बाद सामाजिक विफलताओं की ओर नजर डालते हैं। महिलाओं, बच्चों, वृद्धों, दलितों, पिछड़ों तथा विस्थापितों को उनका हक दिलाने में ही लोकतंत्र की सफलता निहित है परन्तु स्थिति वास्तव में निराशाजनक ही अधिक है। दहेज के विरुद्ध कानून है, किन्तु दहेज का दानव दिन-प्रतिदिन विकराल होता जा रहा है। बाल विवाह अवैध है लेकिन समाज के बड़े तबके ने इसे अभी तक नहीं नकारा है। विधवा विवाह को कानूनी स्वीकृति जरूर मिली है, लेकिन सामाजिक स्वीकृति अभी तक नहीं निरंतर बढ़ती भ्रूण हत्या ने नई चिंताएं पैदा कर दी है। महिलाएँ घर से बाहर निकलने लगी हैं, लेकिन घर के भीतर के साथ-साथ बाहर वाली समस्याएँ भी शुरू हो गयी हैं। प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से महिलाओं के विरुद्ध हिंसा का बढ़ना, उनके बढ़ते कदमों को रोक रही है। आगे बढ़ने की तमाम कहानियों के बाद आज भी पारिवारिक निर्णयन में उनकी भागीदारी नगण्य ही है।

बच्चे देश के भविष्य होते हैं। उनके सम्पूर्ण विकास में ही व्यवस्था का भविष्य छुपा होता है। किन्तु अभी भी बाल श्रम से मुक्त समाज की स्थापना महज एक सपना ही बना हुआ है। वृद्ध समाज के लिये प्रभावी सुरक्षा तंत्र के अभाव से हम न केवल उनके गरिमापूर्ण तथा अधिकार सम्पन्न जीवन के लोकतांत्रिक अधिकार की अवहेलना कर रहे हैं बल्कि अनुभव रूपी संसाधन के सम्पूर्ण लाभ से वंचित भी हो रहे हैं। इसी प्रकार लगभग दो करोड़ से अधिक विकलांग लोगों को आत्मनिर्भरता तथा सम्मानपूर्ण जीवन प्रदान किया जाना एक लोकतांत्रिक समाज की अपेक्षा है। इतना ही नहीं राष्ट्र राज्य की विभिन्न नीतियों के फलस्वरूप विस्थापित लोगों का समुचित व मानवीय पुनर्वास हमारे समाज का लोकतांत्रिक कर्त्तव्य बनता है। लेकिन इन सभी कर्त्तव्यों के पालन में हम काफी असफल दिखते हैं।

लोकतंत्र का अंतिम निहितार्थ विकसित, सभ्य, सबल व सुन्दर समाज के साथ-साथ नैतिकतामूलक समाज की स्थापना होती है। दुर्भाग्य से भारतीय लोकतांत्रिक व्यवस्था ने सबसे ज्यादा निराशाजनक प्रदर्शन नैतिकता के क्षेत्र में ही किया है। भ्रष्टाचार की सामाजिक स्वीकार्यता बढ़ी है, इसे आज आवश्यक बुराई (Necessary Evil) माना जाने लगा है। प्रत्येक व्यक्ति अपनी छमतानुसार बहती गंगा में हाथ धो रहा है। राजनीतिक भ्रष्टाचार में नित नये-नये कीर्तिमान बन रहे हैं। विभागों में घूसखोरी अधिकार शुल्क बन चुका है, इस गंदगी की प्रवाहधारा अर्श से फर्स की ओर है।

आज आम जीवन में ईमानदार व्यक्ति को मूर्ख समझा जाता है। कार्यालयों में कर्त्तव्यनिष्ठ व्यक्तियों का मजाक उड़ाया जाता है। प्रत्येक क्षेत्र में पैरवी प्रतिभा को पछाड़ रही है। सही अर्थों में आज नैतिकता की स्थिति उस ऊपर फेंकी हुई गेंद के समान है जो स्वाधीनता आंदोलन के समय सर्वोच्च पर थी, पर आज निरंतर नीचे गिर रही है।

अपनी तमाम सीमाओं के बाद ऐसी बात बिल्कुल नहीं है कि भारतीय लोकतंत्र मे केवल खोपा है। 'क्या पाया?' की फेहरित 'क्या खोया?' से कहीं अधिक लम्बी है। इसलिए हम 'क्या पाया? की ओर रुख करते हैं। इस क्रम में सर्वप्रथम राजनीतिक लोकतंत्र की उपलब्धियों का ही विश्लेषण करते हैं।

पूरी तरह निराशावादी सोच रखने वालों से सवाल किया जा सकता है कि क्या भारतीय लोकतंत्र में चौदह बार लोकसभा चुनाव का महापर्व उल्लास के साथ नहीं मनाया है? क्या इसी भारत में बिना किसी संघर्ष के शांतिपूर्वक जनता की अदालन के आदेशानुसार सत्ता का हस्तांतरण नहीं हुआ है? लाख गरीबी और निरक्षरता के बावजूद क्या लोगों ने केवल पर्ची और पेटी के बल पर परम प्रतापी राजनीतिक आकाओं को धूल धूसरित नहीं किया है? जो भी तानाशाही की हद तक गया, लोगों ने क्या उसे पर्ची की ताकत नहीं दिखा दी? जिसने भी जन भावना को ठेस पहुंचाई. क्या उसे भारतीय मतदाता ने सत्ता से बेदखल नहीं कर दिया?

वास्तव में ये सब हुआ। इसीलिये भारतीय मतदाता की परिपक्वता व जागरूकता का लोहा पूरी दुनिया मानती है। राजनीतिक लोकतंत्र की विफलताएँ कितनी भी गिनायी जाएँ, हरेक व्यक्ति को स्वीकार करना ही होगा कि भारतीय राजनीतिक लोकतंत्र पूरी तरह चुका नहीं है, बल्कि बहुत कुछ हासिल किया है।

इसी देश में कश्मीर जैसे आतंकवाद प्रभावित राज्य में लोगों ने अपने मन की सरकारी बनायी। कश्मीर में स्वतंत्र व निष्पक्ष चुनाव भारतीय लोकतंत्र का उजला पक्ष है। पूर्वोत्तर में मिजोरम के बाद गोरखा तथा मोडों लोगों ने हथियार फेंककर मतदान पेटी को उठाने का निर्णय लिया है। यह हमारे लोकतंत्र की सफलता की नयी कहानी है। इसी लोकतात्रिक व्यवस्था ने बिना किसी खूनी क्रांति के दलितों एवं पिछड़ों को राजनीतिक प्रतिनिधित्व दिया। पंचायत स्तर पर तृणमूल लोकतंत्र (Grass not Democracy) की नींव डाली और इसमें महिलाओं को 1/3 आरक्षण भी दिया। मतदाता की जागरूकता दिन-ब-दिन लड़ रही है।

आज हजारों की संख्या में महिलाएँ चुनाव में जीत रही हैं और अनेक कमियों के बावजूद महती भूमिका भी निभा रही हैं। यह भारतीय लोकतंत्र का ही कमाल है कि निरक्षर तथा गरीब महिलाएँ भी ग्रामीण समाज का सकारात्मक नेतृत्व करने लगी हैं।

गठबंधन की राजनीति परिपक्व हो चली है। क्षेत्रीय दलों का उभार जोरों पर है। सबको साथ लेकर चलने की नीति स्वीकार्य हो चली है-

क्या ये सब परिपक्व लोकतंत्र के लक्षण नहीं है?

इन सबके अलावा अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता प्रेस को आजादी तथा महिलाओं, अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों व अल्पसंख्यकों के लिये वैधानिक संस्थाओं का विकास कम उल्लेखनीय नहीं है। चुनाव आयोग ने जिस निष्पक्षता एवं स्वतंत्रता से कार्य किया है, वह अपने आप में काबिले तारीफ है। न्यायिक प्रणाली की तमाम कमजोरियों के बावजूद उच्चतम न्यायालय एवं उच्च न्यायालयों ने लोकहित की रक्षा के लिये जो तत्परता दिखाई है, क्या वह कम है?

यदि हम अपने पड़ोसी राष्ट्रों और अन्य विकासशील राष्ट्रों की ओर देखते हैं तो तस्वीर और भी साफ हो जाती है। अधिकांश विकासशील राष्ट्रों में लोकतंत्र रह-रहकर लौटता है या लुक-सुक कर चलता है। अनेक देशों में संविधान को ताश के पत्तों की तरह फेंटा जाता है या सैनिक तानाशाही के शिकंजे में कस दिया जाता है। अनेक बार चुनाव के नतीजे जादूगर के रूमाल की तरह नेताजी की जेब से निकल आते हैं। पड़ोस में ही लोकतंत्र तानाशाही के बूट तले सिसकियाँ ले रहा है। लोकतांत्रिक रूप से विफल राष्ट्रों के बीच घिरा भारतीय लोकतंत्र दिन-ब-दिन सुद ही हुआ है।

'क्या पाया?' के क्रम में आर्थिक लोकतंत्र के विश्लेषण की अपनी महत्ता है। दिन-ब-दिन आर्थिक कारकों का महत्व व्यावहारिक दृष्टिकोण से लगातार बढ़ता ही जा रहा है।

भारत में समतामूलक समाज की स्थापना के सपने को मुँह चिढ़ाती तमाम विफलताओं के साथ एक मोहक मुस्कुराता चेहरा भी है। इन तत्वों को नकारा नहीं जा सकता है कि आजादी के बाद निरपेक्ष गरीबी तथा सापेक्ष गरीबी दोनों कम हुई हैं। आम लोगों की आय बढ़ी है, क्रय क्षमता में वृद्धि हुई है, उपभोग का स्तर सुधरा है, दो-तिहाई जनसंख्या साक्षर हो चली है, महिला साक्षरता में तीन गुनी वृद्धि हुई है। हरित क्रांति में भुखमरी से निजात दिखाई है, अकाल अब पुरानी बात हो चुकी है, बहुरंगी क्रांतियों से उल्लेखनीय सुधार हुआ है, महामारियों ने भारत का रुख करना छोड़ दिया है, पोलियो उन्मूलन अभियान ने अप्रतिम सफलता दर्ज की है। उल्लेखनीय है कि जीवन प्रत्याशा में भी वृद्धि हुई है।

क्या यह सच नहीं है कि शेयर बाजार का नाम सुनते ही बिदकने वाला मध्यम वर्ग इसमें पैसा लगा रहा है। मोबाईल विलासिता से आवश्यकता की वस्तु बन गई है। कभी बुद्ध बक्शा समझा जाने वाला टी.वी. गांवों तक पहुंच गया है। गांवों के किसानों के बेटा-बेटी भी डॉक्टर, इंजीनियर, फैशन डिजाइनर, मॉडल, पत्रकार बनने लगे हैं। नीचे ओहदे से भी लोग ऊंची उड़ानें भर रहे हैं।

कभी सपेरों का देश कहा जाने वाला भारत आज विश्व आर्थिक जगत का बाजीगर बनकर उभरा है। खुशहाली की नई दौर भले ही शहरी मध्यम वर्ग तक अधिक सीमित रही हो, किन्तु इसने भारत को ऐसे बाजार में बदल दिया है कि बहुराष्ट्रीय कंपनियों इसके चरणों में लेट रही हैं। शहरी युवा व्यवसायियों की नई जमात उमरी है। आम युवाओं की जेब में पहले के मुकाबले अधिक पैसा है, जेहन में पिछड़ी पीढ़ी की तुलना में अधिक उम्मीद है। आज मंजिल को पाने के लिये वैश्विक विकल्प हैं।

गाँधीजी ने कहा था कि भारत गांवों में बसता है। गांवों की तस्वीर भी बदली है। पगडियों की जगह कच्ची सड़कें बन रही हैं। कच्ची सड़कों का स्थान पक्की सड़कें ले रही हैं। अधिकांश लोगों तक पेयजल पहुंच चुका है। पंचायत भवन, प्राथमिक स्कूल, प्राथमिक चिकित्सा केन्द्र आदि के रूप में अभूतपूर्व अधोसंरचनात्मक विकास हुआ है। ई-चौपाल नया जागरण पैदा कर रही है। ग्रामीण संचार सेवक घर पर मोबाइल से संदेश का आदान-प्रदान करा रहे हैं। गांवों के बच्चों ने गुल्ली-डंडा की जगह बैट बाल थाम लिया है।

सामाजिक लोकतंत्र की दृष्टि से भी भारतीय उपलब्धियों को कम नहीं आंका जा सकता। महिलाओं के लिये चारदीवारी के भीतर कैद होने वाली बात अब पुरानी बात बनती जा रही है। 73वें एवं 74वें संविधान संशोधन अधिनियम ने महिलाओं को एक तिहाई आरक्षण का प्रावधान किया है। अधिकांश राज्य सरकारों ने भी सरकारी नौकरियों और व्यावसायिक संस्थाओं में महिला आरक्षण का प्रावधान किया है। महिलाओं की उपलब्धियों को कोई कम करके नहीं आंक सकता। जब भी बोर्ड का रिजल्ट आता है, मुख्य खबर होती है- ''छात्राओं ने छात्रों को फिर पछाड़ा।'' अब महिलाएँ सभी क्षेत्रों में अपनी उल्लेखनीय उपस्थिति दर्ज कराने में सफल रही हैं। चाहे प्रबन्धन जगत हो, मीडिया को दुनिया हो, NGO का क्षेत्र हो या फिर शासन, प्रशासन की बात हो प्रतिभा पाटिल ने देश के राष्ट्रपति पद पर आसीन होकर 'राष्ट्रपति' शब्द पर ही लिंग की दृष्टि से सवालिया निशान लगा दिया है।

किसी का बचपन हताश न हो इसके लिये भी अनेक प्रयास किये गये हैं। 14 वर्ष तक के बच्चों की अनिवार्य शिक्षा का प्रावधान किया गया है। कोई कुपोषण का शिकार न बने, IMR-MMR सुधर सकें;

इसके लिये NRHM (National Rural Health Mission) लाया गया है, टीकाकरण की व्यापक व्यवस्था की गई है। आंगनबाड़ी केन्द्रों (AWCS) की सर्वत्र स्थापना की जा रही है। **'दो बूंद पोलियो की'** भारत के सबसे सफल अभियानों में से एक रहा है। स्कूल में बच्चों के मध्याह्न भोजन हेतु पर्याप्त प्रबंध किये गये हैं।

इसी तरह वृद्धों के लिये निराश्रित पेंशन की बात करें या फिर अन्नपूर्णा योजना की, दलितों से संबंधित कठोर कानूनी प्रावधान हों या फिर पिछड़ों के लिये आरक्षण जैसे प्रयास, कोशिशें जारी है। इन कोशिशों की अपनी सीमाएँ भी है। चूँकि ये सारे बिन्दु सामाजिक परिवर्तन की दीर्घकालिक प्रक्रिया से जुड़े हैं, इसलिये इनके परिणाम त्वरित दिखाई भी नहीं दे सकते। फिर भी ये तो स्वीकारना ही होगा कि सामाजिक लोकतंत्र की दृष्टि से भी भारतीय व्यवस्था सकारात्मक दिशा में ही गति कर रही है।

कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि हमने लोकतंत्र में जितना खोया है, उससे कहीं अधिक पाया है। जो कुछ भी खोया-खोया-सा प्रतीत हो रहा है, वह एक विकासशील समाज के संक्रमण से गुजरने का लक्षण है। यह बता रहा है कि दशा कुछ भी हो, दिशा सकारात्मक है। इसीलिये खोने को लेकर रोने के बजाय अधिक महत्वपूर्ण प्रश्न है कि कैसे हम सपनों के भारत का निर्माण कर सकें। स्वस्थ, सुन्दर तथा सतत् विकासशील समाज का निर्माण कर सकें।

इस संदर्भ में महत्वपूर्ण है कि किसी भी व्यवस्था के सम्यक सुधार के लिये सर्वप्रथम नागरिक स्तर पर सुधारों की जरूरत पड़ती है। संपूर्ण समाज में कानून के अनुपालन को आत्मसात् करना होगा। लोकतंत्र में कानूनों का अनुपालन सभी साध्यों को प्राप्त करने का हेतु है। इसके बिना लोकतंत्र के लाभों को वास्तविक अर्थों में नहीं प्राप्त किया जा सकता। कानूनों का पालन ठण्डे के जोर पर नहीं, वरन् स्वेच्छा से होना चाहिए। लोकतंत्र में अनुशासन की भी विशिष्ट महता होती है। प्राय: हम दूसरों से तो अनुशासन की अपेक्षा करते हैं, परन्तु स्वयं अनुशासन से कतराते हैं। व्यक्तिगत एवं सामूहिक स्तर पर अनुशासन से ही लोकतंत्र चरितार्थ हो सकता है। साथ ही लोकतंत्र में हिंसा, टकराव तथा असहिष्णुता का कोई स्थान नहीं होता। अधिकारों की लड़ाई वैधानिक तरीके से ही किया जाना चाहिए। यह भी स्मरणीय है कि अधिकार के साथ-साथ कर्त्तव्यों की भी चेतना लोकतंत्र के लिये अत्यावश्यक है। लोकतंत्र में अधिकारों एवं कर्त्तव्यों के बीच चोली-दामन का रिश्ता होता है।

राजनीतिक क्षेत्र में एक गहन सफाई अभियान की आवश्यकता है। यह अभियान समग्र रूप से हर स्तर पर और हर दृष्टिकोण से होना चाहिए। इसमें मतदाताओं की केन्द्रित भूमिका है। उन्हें यह सुनिश्चित करना होगा कि औपचारिक संकीर्ण आधार वाले उम्मीदवारों को कतई मत न दें। जाति, क्षेत्र, धर्म तथा निजी स्वार्थी से ऊपर उठकर योग्य, ईमानदार तथा कर्त्तव्यनिष्ठ उम्मीदवारों को ही चुनें सभी प्रकार के लालच तथा भय से मुक्त होकर मतदान करने से ही स्वच्छता लायी जा सकती है।

इस महत्वपूर्ण कार्य में मीडिया की भी भूमिका अहम् है। जनता को जागरूक बनाने में एवं चुनाव के उम्मीदवारों के वास्तविक चेहरे को सामने लाने में मीडिया ही सबसे सक्षम है।

पिछले करीब 60 सालों में भारत राष्ट्र ने एक गणतंत्र के रूप में अनेक प्रगतिशील आयाम स्थापित किये हैं। समाज निर्माण से लेकर देश-निर्माण तक सभी उद्देश्यों को पाने में लोकतांत्रिक उपायों को ही अपनाया गया है। भारत की जनता अपनी दारुण एवं निरक्षरता के बावजूद सरकारों से जवाब-तलबी करने में समर्थ हुआ है और इसी जनता ने बार-बार अतिवादी तत्वों को खारिज भी किया है। परन्तु प्रगति की इस नींव में कुछ ऐसी दरारें हैं, जिन्हें हर हाल में भरना होगा। ध र्म और राजनीतिक, जाति और राजनीति तथा अपराध और राजनीति के आपसी घालमेल को अलग करना होगा। राजनीति में चल रहे खोटे सिक्कों का प्रचलन बंद करना होगा तथा असली सिक्कों की पहचान कर उन्हें प्रोत्साहित करना होगा।

एक आदर्श भारतीय नागरिक के लिये मतभेद का कर्तव्य एक मौलिक दायित्व है। परन्तु इस कर्तव्य को निभाने वाले ईमानदार और साहसी लोग सीमित ही हैं ऐसे कर्त्तव्यों को निभाने के लिये व्यक्तिगत निजी स्वार्थी से ऊपर उठना होता है। स्वतंत्रता शब्द में तो सम्मोहकता है परन्तु उत्तरदायित्व शब्द में ऐसा कोई आकर्षण नहीं। स्वतंत्रता के साथ दायित्वों का अनुपालन लोकतंत्र की सफलता के लिये प्रारंभिक आवश्यकता है। स्वतंत्रता, मर्यादित स्वतंत्रता के रूप में हो उपभोग की जानी चाहिए।

मूल्यपरक शिक्षा के बिना उन चार महान आदर्शों को पूरा करना असंभव है जिन पर हमारा लोकतंत्र टिका है। ये चार आदर्श हैं- स्वाधीनता, समानता, न्याय तथा बन्धुता। मूल्यों पर आधारित शिक्षा के अभाव में लोक जीवन से नैतिक मूल्यों का ह्रास हुआ है तथा अनैतिक तत्वों का घुसपैठ बड़ा है। ऐसी परिस्थिति में कोई भी लोकतंत्र सशक्त तथा स्वचा नहीं हो सकता है। अत: संपूर्ण शिक्षा प्रणाली में मूल्यों का समावेश किया जाना अनिवार्य है। जो व्यक्ति मूल्यात्मक शिक्षा से दूर है, वह अशिक्षितही होता है। मूल्यात्मक शिक्षा ही वह सीढ़ी है जिस पर चलकर भारतीय लोकतंत्र मोक्ष को प्राप्त कर सकता है।

भारतीय लोकतंत्र में भ्रष्टाचार होने की बात कही जा रही है हमें यह भी याद रखना चाहिए कि अपने लोकतांत्रिक शैशवावस्था में ब्रिटेन

और अमेरिका को भी इस भ्रष्टाचार से गंभीरतापूर्वक दो-चार होना पड़ा था। वहाँ के गलियारों में भी सत्ता के दलाल खूब घूमा करते थे। आज ये व्यवस्थाएँ अपनी संक्रमणकालीन विसंगतियों से काफी हद तक ऊपर आ चुकी है। हम भी लगातार तीव्र गति से परिपक्वता की ओर बढ़ रहे हैं। इसके बावजूद भ्रष्टाचार के विरुद्ध कठोर कदम उठाना ही होगा। इस लड़ाई को जनांदोलन का रूप देना होगा।

हमें एक ऐसे लोकतांत्रिक समाज का निर्माण करना है कि आखिरी छोर पर खड़ा व्यक्ति भी अपनी भागीदारी महसूस कर सके। हमें हमेशा याद रखना होगा कि GDP बढ़ने मात्र से आम व्यक्ति की समस्याएँ दूर नहीं हो सकती हैं। विकास के साथ उसके परिणामों का न्यायोचित वितरण भी उतना ही आवश्यक है।

भारतीय लोकतंत्र के विकास की दृष्टि से त्रिस्तरीय पंचायतों का सफलतापूर्वक संचालन अत्यन्त महत्वपूर्ण चरण है। हम गाँव के स्तर तक लोकतंत्र को ले जाने में काफी हद तक सफल रहे हैं। अब लोकतांत्रिक मूल्यों को परिवार तथा व्यक्ति के स्तर तक ले जाना होगा, तभी लोकतंत्र एक जीवन पद्धति बन पायेगा तथा हम सतत् लोकतंत्र की ओर बढ़ सकेंगे और यह महत्वपूर्ण कार्य सरकार नहीं कर सकती, बल्कि जनता के स्वयं के आगे आने से ही संभव हो सकेगा।

कई बार यह प्रश्न उठाया जाता है कि क्या भारत में लोकतंत्र स्थिर रहेगा और क्या राष्ट्र की अखण्डता बरकरार रहेगी?

दोनों प्रश्नों का उत्तर निरपेक्ष 'हाँ' है। आपातकाल के झंझावात से निकलकर तथा गठबंधन के संक्रमण काल में तपकर भारतीय लोकतंत्र स्थायित्व को पा चुका है। भारत ने यह सिद्ध कर दिया है कि लोकतंत्र सिर्फ पश्चिम की बपौती नहीं है, वरन् भारत जैसे तीसरी दुनिया के देश में भी फल-फूल सकता है। भारत में यह जीवन पद्धति की ओर अग्रसर है। रही बात अखण्डता की तो बाहर से हमें कोई तोड़ नहीं सकता। अंदर से हम टूटेंगे नहीं, क्योंकि पाँच हजार बरस पुराना जोड़ जो है। इस जोड़ को सतत् और सुदृढ़ बनाने के लिये लोकतंत्र में और लोकतंत्र निभाने की आवश्यकता है।

❑❑❑

KHAN GLOBAL STUDIES
Kisan Cold Storage Campus, Musallahpur, Patna-6
KHAN SIR

7. परहित सरिस धरम नहीं भाई

एक बार महाराजा शिवि धार्मिक अनुष्ठान कर रहे थे। तभी एक कबूतर एक बाज से बचता हुआ उकी गोद में आ बैठता है तथा उनसे रक्षा की माँग करता है। लेकिन तभी बाज वहाँ आता है और राजा से अपने भक्ष्य की माँग करता है। राजा इस धर्मसंकट से निकलने हेतु कबूतर के जितना स्वयं का माँस देने को तैयार हो जाते है परंतु अंतत: पाते है कि कबूतर के वजन के बराबर उनको अपना पूरा शरीर देना पड़ेगा।

इस स्थिति में भी राजा विचलित नहीं होते व परहित हेतु अपना शरीर दान देने हेतु तैयार हो जाते हैं तभी कबूतर रूपी अग्निदेव व बाज रूपी इन्द्र प्रकट होते है कि तुम अपने धर्म के पालन में सफल रहे। परहित से बड़ा कोई धर्म नहीं है।

ऐसे ही मत का समर्थन तुलसीदास जी ने किया है और कहा है-

''परहित सरिस धरर्म नहीं भाई।

पर पीड़ा सम नहिं अधमाई॥

अर्थात् परहित/परोपकार से बड़ा कोई धर्म नहीं है व दूसरों को कष्ट पहुँचाने से नीच कर्म कोई नहीं है।

इस निबंध में हम इन्हीं पक्षों का विचार करेंगे कि सबसे बड़ा धर्म क्या है? परहित/परोपकार का क्या महत्व होता है? परहित से समाज और व्यक्ति को क्या लाभ होता है? इत्यादि।

धर्म के अनेक रूप होते हैं। पूजा-पाठ, जप, कर्मकाण्ड से लेकर लोगों में मानवीय गुणों का विकास तक सब धर्म के ही रूप है। 'धारयते इति धर्म:' अर्थात् जिसे धारण कर पाने की शक्ति हो वही धर्म है। यहाँ विचारणीय परहित को धारण करना ही सबसे बड़ा धर्म है क्योंकि हर धर्म में परोपकार, दया करूणा को सर्वोत्तम दर्जा प्राप्त है अत: इस संदर्भ में 'परहित ही सबसे बड़ा धर्म हुआ।' कहा भी गया है-

''घर से मस्जिद है बहोत दूर

चलो यूँ करले किसी रोते हुए बच्चे को हंसाया जाए॥

इसी तरह किसी वृद्ध की सहायता करके, भूख से रोते हुए बच्चे को खाना खिलाकर जिस आनन्द की प्राप्ति होती है वह किसी भी भौतिक वस्तु की प्राप्ति में नहीं होती। क्योंकि परोपकार से उत्पन्न आनन्द ही परमानंद है।

अब हम जानेंगे कि परहित ही सबसे बड़ा धर्म क्यों है उसका महत्व क्या है। इसके लिए हम 'परहित' शब्द का विश्लेषण करते है। परहित पर+हित शब्द से बना है अर्थात् दूसरों का हित/भलाई। जब व्यक्ति अपने 'स्व' (स्वार्थ) से ऊपर उठकर दूसरों के कल्याण हेतु कार्य करता है तो उसे परमानंद की प्राप्ति होती है। इसी तरह वह एक ऐसे समाज के निर्माण में भागीदारी निभाता है जिसमें सभी एक-दूसरे की सहायता हेतु तत्पर रहते है। इस तरह परहित में व्यक्ति समाज के साथ-साथ स्वयं का कल्याण भी करता है। रहीम ने इसी परोपकार/परहित की महिमा बताते हुए कहा है-

रहिमन यों सुख होत हैं, उपकारी के संग

बाँटनवारे को लगे, ज्यों मेंहदी को रंग।

गह विचार करें तो हम पाएँगे कि प्रकृति का मूल आधार/संदेश भी परहित का ही है। पेड़-पौधे, सूर्य-चंद्रमा, नदी-झरने, वन इत्यादि स्वयं के लिए नहीं अपितु सभी के हित के लिए कार्य करते हैं। इसी तरह मानव को भी स्वयं के स्वार्थ से प्रेरित न होकर जीवमात्र के कल्याण के लिए कार्य करना चाहिए क्योंकि यही उसके जीवन का एक मात्र धर्म है। तभी तो कहा गया है-

''वृक्ष कबहुं न फल भखैं

दी न सचैं नीर।

परमार्थ के कराने,

साधुन धरे सरीर॥''

इतिहास ही वर्तमान हमें ऐसे अनेकों उदाहरण मिल जाएंगे जहाँ विभिन्न महापुरुषों ने 'परहित' को ही सबसे बड़ा धर्म माना। महात्मा गांधी हो या नेल्सन मंडेला, मदर टेरेसा हो या निवेदित, भगत सिंह हो या सुभाष चन्द्र बोस, ईश्वर चंद्र विद्यासागर हो या विवेकानंद इन सभी अपना सर्वस्व परहित में न्यौछावर कर दिया। वास्तव में यह बलिदान ही परम सुख/परम धर्म है। विवेकानंद जी के अनुसार-

''जितना हम दूसरों की भलाई करते हैं उतना ही हमारा हृदय शुद्ध होता है और उसमें ईश्वर निवास करता है।''

निष्कर्षत: हम कह सकते हैं कि धर्म का सार या सबसे बड़ा धर्म परहित/परोपकार ही है। क्योंकि यही हमें पशुओं से भिन्न बाता है तथा मानव गुणों से युक्त बनाता है। बहुजन हिताय व बहुजन सुखाय की भावना रखते हुए 'परहित' में अपना सर्वस्व न्यौछावर कर देना ही परमधर्म है और परहित से व्यक्ति जो चाहे पासकता है समाज का कल्याण भी व स्वयं का कल्याण भी। तभी तो कहा गया है-

''परहित बस जिन्ह के मन माहीं।

तिन्ह कहुँ जग दुर्लभ कछु नाहीं॥''

❑❑❑

8. नर हो न निराश करो मन का

महाभारत में युद्ध के समय अर्जुन अपने समक्ष अपने परिवारजन के साथ युद्ध करने की चिंता से डकर निराश हो जाते है वह युद्ध न करने का निश्चय लेते है परंतु उसी समय श्रीकृष्ण उहें निराशा त्यागकर मन को मजबूत बाते हुए धर्मरक्षा हेतु युद्ध करने को प्रेरित करते हैं। इसी तरह हर मनुष्य को अपने जीवन रूपी युद्ध में कभी अपने मन को निराशा नहीं करना चाहिए। क्योंकि हमारा मनोबल ही हमारी सफलता का आधार है। मैथिलीशरण गुप्त के शब्दों में-

''नर हो, न निराश करो मन को।

कुछ काम करो, कुछ काम करो॥

इस निबंध में हम इसी परिप्रेक्ष्य पर विचार करेंगे कि हमे क्यों अपने मन को निराश नहीं करना चाहिए। निराश होने के क्या परिणाम हो सकते हैं। क्यों मोबल का होना जरूरी है। इस निराशा से कैसे किला जाए अर्थात् मन की शक्ति को कैसे जागृत किया जाए।

सर्वप्रथम हम यह जानेंगे कि हमें अपने मन को क्यों निराश नहीं करना चाहिए। विचारणीय है कि जब हम निराश हो जाते हैं तथा मन में नकारात्मक विचार भर लेते हैं तो किसी कार्य को शुरू करने की व निरंतर प्रयास करने कोशिश ही नहीं करते। छोटी-सी अड़चन पर ही हार मान लते हैं।

इसी तरह मनुष्य का समस्त जीवन मन व मस्तिष्क के प्रतयक्ष सम्पर्क व संतुलन पर ही निर्भर है। मन में हम जिस प्रकार के विचार रखते हैं हमारा शरीर भी उसी अनुरूप ढल जाता है। यदि हमारे मन में निराशा या हीन भावना है तो हमारा शरीर भी शिथिल रहता है वहीं आशावादी मन होने पर हमारे भीतर स्फूर्ति का संचार होता है। इसलिए हमें कभी मन से निराश नहीं होना चाहिए। तभी तो शंकराचार्य जी ने कहा है-

''जिसने मन को जीत लिया, उसने जगत को जीत लिया।''

हमने यह जाना कि क्यों व्यक्ति को निराशा की भावना से ग्रसित नहीं होना चाहिए। निराशा अंतत हार की तरफ ही ले जाती है। अब हम मनोबल के महत्व को जानेंगे।

हमारा मनोबल ही हमारी सफलता का आधार है। मनुष्य अन्य जीव से इसी अर्थ में भिन्न है क्योंकि वह बिना निराश हुए निरंतर प्रयास कर सकता है। उसके पास अपार संभावनाएं मौजूद है अत: उसे निराश न होकर अपनी मनशक्ति का उपयोग करना चाहिए। क्योंकि जब हम निराश न होकर उच्च आशा व दृढ़ मनोबल के साथ किसी कार्य को करने की ठान लेते हैं तो लाख मुश्किलें आने के बावजूद हम निरंतर प्रयास करते रहते हैं और यही प्रयाश हमें सफलता रूपी विजय प्रदान करता है। तभी तो कहा गया है।

''दुख सुख सब कहं परत है,

पौरुष तबहूँ न मीत।

मन के हारे हार है,

मन के जीते जीत॥''

हमने यह तो जान लिया कि हमें क्यों निराश नहीं होना चाहिए व मनोबल का महत्व क्या है। परंतु अहम सवाल उठता है कि निराशा से बचा कैसे जाए। मन में निराशा के स्थान पर जीत की भावा कैसे लाई जाए।

इसके लिए आवश्यक है सबसे पहले मन को सशक्त करना। अपने मन से हीनता की भावना को समाप्त करना। इसके लिए हम महात्मा गांधी, नेल्सन मंडेला, मीराबाई, अब्दुल कलाम इत्यादि प्रेरक व्यक्तियों से सीख ले सकते है कि हमें किसी भी विकट परिस्थिति में निराश नहीं होना है।

इसके साथ ही हमें स्वयं को कमजोर मानने की भावना का भी त्याग करना होगा क्योंकि जब व्यक्ति स्वयं को कमजोर मानता है तो वह पहले ही निराश हो जाता है। एक बार मन को सशक्त कर लेने पर हम विकट से विकट परिस्थिति में भी निराश नहीं होंगे।

इस तरह सभी जातियों से श्रेष्ठ मनुष्य को अपने पौरूष का आभास करते हुए कभी निराश नहीं होना चाहिए तथा अपनी क्षमता काउचित उपयोग करते हुए निरंतर जीव मात्र के कल्याण के लिए कार्य करना चाहिए तभी तो कहा गया है-

जो भी परिस्थितियाँ मिलें,

काँटे चुभें कलियाँ खिले।

हारे नहीं इंसान,

है संदेश जीवन का यही॥

❑❑❑

9. नई शिक्षा नीति 2020 : चुनौतियाँ एवं संभावनाएं

''शिक्षा एक सर्वोत्तम शस्त्र है जिसका उपयोग दुनिया को बदलने में किया जा सकता है।''

नेल्सन मंडेला का उक्त कथन शिक्षा के महत्व को दर्शाता है। किसी देश की उनति व विका में भी शिक्षा का अहम योगदान होता है। बदलते वातावरण व नई तकनीक के साथ सामंजस्य बनाए रखने हेतु आवश्यक है कि देश की शिक्षा नीति में भी समयानुसार परिवर्तन होते रहें।

इसी आवश्यकता को देखते हुए लगभग 34 वर्ष बाद 29 जुलाई 2020 को नई शिक्षा नीति लाई गई।

इस निबंध में हम नई शिक्षा नीति से जुड़े विभिन्न पहलुओं पर विचार करेंगे। इसके प्रावधानों का विश्लेषण करते हुए इसमें निहीत संभावनाओं को जानेंगे। साथ ही नई शिक्षा नीति के समक्ष क्या-क्या चुनौतियाँ हैं उनका भी आकलन करेंगे।

नई शिक्षा नीति 2020 : संभावनाएँ-

मौजुदा शिक्षा नीतियाँ जिन अपेक्षाओं पर खड़ी नहीं उतर सकी, नई शिक्षा नीति विभिन्न प्रावधानों द्वारा अपेक्षाओं की पूर्ति करने में सक्षम प्रतीत होती है।

स्कूली शिक्षा में 5 + 3 + 3 + 4 डिजाइन वाले शैक्षणिक संरचा संबंधी प्रावधान, प्रारंभिक शिक्षा से उच्च शिक्षा तक सभी स्तर को प्रभावी बनाएगा। साथ ही बुनियादी साक्षरता और संख्यात्मक ज्ञान पर राष्ट्रीय मिशन व कक्षा- 5 तक मातृभाषा/क्षेत्रीय भाषा में शिक्षा का प्रावधान मूलभूत शिक्षा को सरल व समावेशी बनाएगा।

नई शिक्षा नीति समग्र विकास पर केन्द्रीत है। मानसिक विकास के साथ-साथ शारीरिक विकास/शारीरिक शिक्षा पर विशेष ध्यान दिया गया है जो कि इसकी समग्रता को दर्शाती है।

इसके साथ ही पाठ्यक्रम संबंधी सुधान उपयोग आधारित शिक्षा प्रदान करने में सहायता करेगा। साथ ही शिक्षा व छात्र प्रगति के आकलन द्वारा ['पराख' व राष्ट्रीय आकलन केन्द्र] शिक्षा की उचित गुणवत्ता भी बनी रहेगी।

नई शिक्षा नीति न केवल छात्रों के संदर्भ में सुधार पर केंद्रीत है अपितु शिक्षाकों पर भी उता ही ध्यान दिया गया है। शिक्षकों की नियुक्ति में पारदर्शिता व समय-समय पर प्रभावी मूल्यांकन द्वारा शिक्षा की उच्च गुणवत्ता की संभावना सुनिश्चित होगी। इस तरह नई शिक्षा नीति 2030 तक सकल नामांकन अनुपात (GER) को 100% करने के सुनहरे स्वप्न को पूरा करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है।

स्कूली शिक्षा के साथ-साथ नई शिक्षा नीति उच्च शिक्षा में सुधार की क्षमता भी रखती है। उच्च शिक्षण संस्थानों में 3.5 करोड़ नई सीटों को जोड़ना, स्नातक पाठ्यक्रम में मल्टीपल एंट्री व एग्जिट सिस्टम, HECI (भारतीय उच्च शिक्षा आयोग) की स्थापना आदि कदम उच्च शिक्षा में GER 50% करने में सहायक सिद्ध होंगे।

इसी तरह दिव्यांग शिक्षा डिजिटल शिक्षा व पारम्परिक ज्ञान आधारित शिक्षा संबंधी पहलू NEP-2020 को समावेशी व संभावना युक्त बनाती है।

नई शिक्षा नीति : चुनौतियाँ

जहाँ एक तरफ नई शिक्षा नीति असीम संभावनाओं से युक्त है, वहीं दूसरी तरफ इसमें कुछ चुनौतियाँ भी मौजूद है।

चूंकि शिक्षा समवर्ती सूची का विषय है अत: इसकी सफलता राज्यों के सहयोग व उनके कार्यान्वयन पर भी निर्भर करता है। साथ ही दक्षिणी राज्यों का 'शिक्षा का संस्कृतिकरण' संबंधी आरोप भी एक विरोध का कारण बन सकता है।

एक अन्य महत्वपूर्ण चुनौति वित्तीय भी है। जहाँ एक तरफ शिक्षा शिक्षा पर GDP का 6% व्यय करने की आवश्यकता है, वहीं शिक्षा में फंडिंग संबंधी जाँच का आकलन होना भी जरूरी है।

इसके अतिरिक्त एक प्रमुख चुनौती ग्रामीण क्षेत्रों में बुनियादी ढांचे की अभाव की भी है। ASER के मुताबिक ग्रामीण क्षेत्र में शिक्षा के क्षेत्र में शिक्षा में निवेश के उपरांत भी उचित सफलता नहीं मिली है। विद्यालयों व कॉलेजों में शिक्षक/प्रोफेसर, बिजली, पानी, लाइब्रेरी, कम्प्यूटर आदि की कमी के चलते शिक्षा की गुणवत्ता पर प्रभाव पड़ता है। इसके अतिरिक्त प्राथमिक शिक्षा ड्रॉप ऑउट का मुद्दा भी चिंता का विषय है।

एक अन्य चिंता का विषय भाषा संबंधी भी हो सकता है। चूँकि भारत में शिक्षक व छात्र अनुपात में समस्या है, ऐसे में प्रत्येक विषय के लिए मातृभाषा में शिक्षक की व्यवस्था होना चुनौतिपूर्ण हो सकता है। साथ ही प्राइवेट स्कूल व सरकारी स्कूल की शिक्षण पद्धति के अन्तर को भी बढ़ा सकता है।

उपर्युक्त चुनौतियों को ध्यान में रखकर NEP का उचित कार्यान्वयन किया जाए तो यह नीति भारत की मौजूदा शिक्षा प्रणाली का वैश्विक स्तर के शिक्षा प्रणाली में कार्यानतर कर सकत है। यह 21वीं सदी के भारत के सुनहरे स्वपनों को साकार करने की असीम संभावाओं से युक्त है।

❑❑❑

10. सादा जीवन उच्च विचार

कहानी है लुम्बिनी के राजकुमार सिद्धार्थ गौतम की। जनम से ही इनके पास दुनिया के किसी भी ऐशोआराम या विलासिता की कमी नहीं रहीं। परंतु इस विलासिता की अपेक्षा सिद्धार्थ को जंगल के सादे व सरल जीवन ने खींचा।

इसी **'सादे जीवन उच्च विचार'** की खोज में सिद्धार्थ ने अपना सर्वस्व त्यागकर ज्ञान अर्जित करने का प्रयास किया और उच्च विचार ने उन्हें **'महात्मा बुद्ध'** का दर्जा दिलाया। 'सादा जीवन उच्च विचार' की यह लोकोक्ति वास्तव जीवन का मूल अर्थ अपने में छिपाए बैठी है।

इस निबंध में हम इन्हीं पहलुओं पर विचार करेंगे कि क्योंकि सादा जीवन आज महत्वपूर्ण है। क्यों सादे जीवन के साथ-साथ उच्च विचार भी रखना आवश्यक है। ऐसी जीवन प्रणाली का क्या महत्व है व कैसे इसे अपनाया जाए।

सर्वप्रथम हम आज की भौतिकवादी सोंच व भौतिकवादी जीवन प्रणाली बात करें तो हम पाते हैं कि आज लगभग हर दूसरे व्यक्ति का जीवन सिर्फ दिखावे में निकल जाता है। भौतिक वस्तुओं की इच्छाएँ कभी खत्म नहीं होती और एक वस्तु के बाद दूसरी की इच्छा रिंतर उत्पन्न होती है। वहीं सोशल मीडिया पर भी इसी विलासिता व क्षण भर के आनंद के लिए व्यक्ति अपनी समस्त ऊर्जा विलासित में खर्च कर देता है।

वहीं दूसरी तरफ जब हम सादा जीवन अपनाते हैं तो हम अपना जवन दूसरों को प्रभावित करने या दिखावा करने के लिए नहीं जीते। हमारी नियंत्रित इच्छाएँ हमें इस विलासिता की दौड़ से उत्पन्न तनाव से भी बचाती है। सादा जीवन का अर्थ यह कदापि नहीं है कि व्यक्ति महत्वकांक्षी न हो। परंतु महत्वाकांक्षी होते हुए भी सरल जीवन प्रणाली अपनाना ही सादा जीवन है। हमारी खुशी दूसरों पर निर्भर न होकर स्वयं पर निर्भर हो जाती है। क्योंकि हमारे जीवन का उद्देश्य दूसरों को प्रभावित करना नहीं है। साथ ही सादा जीवन हमेशा संतुष्टि की भावना भी देता है, व समाज कल्याण को बढ़ावा भी। व्यक्ति अनावश्यक वस्तु/धन संग्रह न करके उसका प्रयोग समाज कल्याण में कर सके। कबीर, रहीम इत्यादि ने भी इसी जीवन प्रणाली को अपनाने का संदेश दिया है। कबीर जी के शब्दों में-

''साँई इतना दीजिए, जामे कुटुम समाय।
मैं भी भूखा ना रहूँ, साधु न भूखा जाए।।

हमने सादे जीवन का महत्व तो जान लिए परंतु यह जानना भी उतना ही महत्वपूर्ण है कि हमारा जीवन तो सादा/सरल होना चाहिए परंतु हमारी सोंच कभी सीमित नहीं होने चाहिए। हमारे विचार नीजि स्वार्थों से युक्त न होकर उच्च होने चाहिए। क्योंकि जिन व्यक्तियों के विचार उच्च होते हैं वो ही समाज में सकारात्मक बदलाव लाते हैं। वे व्यर्थ की रूढ़िवादिता, पूर्वोग्रहों में न फंसकर सदैव नए परिवर्त व समाज की भलाई हेतु कार्यरत रहते हैं।

राजा राममोहन राय, महात्मा गांधी, अब्राहम लिंक इत्यादि ने अपने समकालीन विचारों से भी आगे बढ़कर उच्च विचारों को अपनाया व समाज कल्याण में योगदान दिया।

यहाँ एक पक्ष यह भी है कि व्यक्ति के उच्च विचार से न केवल समाज को फायदा होता है, बल्कि उसको भी मानसिक रूप से संतुष्टि रहती है। उसे व्यर्थ तनाव का सामा नहीं करना पड़ता। साथ ही उच्च विचार एक भावनात्मक परिपक्वता प्रदान करते हैं जिससे व्यक्ति अपनी असीमित इच्छाओं व मन पर नियंत्रण कर पाता है। मन पर नियंत्रण ही मुख्यत: आवश्यक है क्योंकि-

जो लोग मन को नियंत्रित नहीं करते। उनके लिए मन शत्रु के समान कार्य करता है।

हमने 'सादे जीवन उच्च विचार' के महत्व को तो समझ लिया। परंतु मुख्य प्रश्न उइता है आज की इस अंधाधुंध विलासिता युक्त जीवन की दौड़ में इसे अपनाए कैसें। किस तरह इस जीवन प्रणाली को विकसित करें।

इस संदर्भ में सर्वप्रथम हमें भावनात्मक परिपक्वता लाते हुए यह समझना होगा कि हमारी इच्छाओं व आवश्यकताओं में अंतर है। हमें हमारा ध्यान इच्छा पूर्ति की अपेक्षा आवश्यकता पूर्ति पर करना चाहिए। इससे हम सरल जीवन प्रणाली को अपना सकेंगे क्योंकि महात्मा बुद्ध के अनुसार 'तृष्णा ही सभी दु:खों का कारण है।'

इसके साथ ही हमें वस्तु प्राप्ति व झुठे दिखावे पर ध्यान न देकर परिवार, भावनाओं व रिश्तों पर ध्यान देने की आवश्यकता है। समाज में व्यक्तित्व का आकलन व सम्मान धन से न होकर उसके खुले विचारों से होना चाहिए। इससे हर व्यक्ति 'सादे जीवन व उच्च विचार' को अपनाने हेतु प्रेरित होगा।

इसके साथ ही हमें अपने हर प्रकार के लोभ-लालच पर भी नियंत्रण रखना होगा चाहे वह धन का लालच हो या शक्ति का, प्रतिष्ठा का लालच हो या पद का। ऐसा होने पर व्यक्ति किसी भी प्रकार के राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक दबाव से मुक्त रहेगा वह अपने कर्तव्य की पूर्ति आसानी से कर सकेगा जिससे उसे संतुष्टि का अनुभव भी होगा। कबीर जी के शब्दों में-

चाह मिटी, चिंता मिटी, मनवा बेपरवाह।
जिसको कुछ नहीं चाहिए, वह है शंहशाह।।

इस तरह हम कह सकते हैं कि 'सादा जीवन, उच्च विचार' ही वह मूल मंत्र है जिससे न केवल व्यक्ति का अपितु सम्पूर्ण समाज का कल्याण संभव है। यही मंत्र ही हमें सतत् विकास की तरफ ले जाएगा।

11. भारतीय संस्कृति : विविधता में एकता

''युनान, मिश्र रोमां सब मिट गए जहाँ से।

अब भी बाकी है नामों निशां हमारा।।

कुछ तो बात है कि हस्ती मिटती हीं हमारी।

सदियों रहा है दुश्मन, दौरे जहां हमारा।।''

उपर्युक्त पंक्तियों को पढ़कर मन में सवाल आता है कि वह कौन-सा कारक है जिसने भारतीय संस्कृति को निरंतर बनाए रखा। जहाँ बड़ी-बड़ी सभ्यताएं संस्कृतियाँ विनिष्ट हो गई वह क्या है जिसने भारतीय संस्कृति के अस्तित्व को निरंतर बनाए रखा है।

गहन विचार करने पर इन सवालों का एक ही जवाब नजर आता है वह है भारतीय संस्कृति की 'विविधता में एकता' संबंधी विशेषता।

इस निबंध में हम भारतय संस्कृति की इन्हीं विविधताओं को जानेंगे। साथ ही यह भी जानेंगे कि कैसे अनेकों विविधता होने के बावजूद एकता बनी हुई है।

विविधता की बात करें तो भारतीय संस्कृति का निर्माण विभिन्न सभ्यताओं, धर्मों, कालों के संगम से हुआ है। सिंधु घाटी से वैदिक सभ्यता तक, मौर्यकाल से गुप्तकाल तक, सल्तनत से मुगल काल सभी कालों में इस संस्कृति को नए आयाम दिए है जिससे इसमें विविधता नजर आती है। परंतु इन विविधता में भी प्रेम, बंधुत्व, सद्भावना जैसे तत्वों ने सभी को एक सुत्र में बांधे रखा है।

भौगोलिक तौर पर देखें तो भारत जितनी विविधता शायद ही किसी देश में हो। यहाँ तक तरफ हिमालय जैसे- ऊंचे पर्वत है तो दूसरी तरफ हिंदमहासागर जैसे गहरे समुद्र, एक तरफ रेगिस्तान है तो दूसरी तरफ नहीं मैदान। इस भौगोलिक विविधता ने सांस्कृतिक विविधता भी पैदा की है।

इसी का असर यहाँ के खान-पान, वेशभूषा, नृत्य, संगीत, भाषा संबंधी विविधता में देखा जा सकता है। परंतु विभिन्न त्यौहारों, नृत्यों, इत्यादि के पीछे निहीत भावना मूलत: एक ही है जो इसकी विविधता में एकता को दर्शाती है। विनयचंद्र जी के शब्दों में-

हिंद देश के निवासी सभी जन एक है।

रंग, रूप, वेश, भाषा चाहे अनेक है।।

इसी तरह विभिन्न क्षेत्रीय विविधताएं भी नई सांस्कृतिक विविधताओं को जन्म देती है। पहाड़ी क्षेत्रों की संस्कृति, जनजातीय संस्कृति, दक्षिण भारत की संस्कृति व पूर्वी भारत की संस्कृति विविध होते हुए भी समग्र रूप से एक विविधता में एकता वाली संस्कृति का निर्माण करती है। जिस तरह हाथ की पांचों अंगुलिया भिन्न-भिन्न होते हुए भी एक ही हाथ का अंग है वैसे ही भारतीय संस्कृति में भाषायी, क्षेत्रीय, इत्यादि विविधताएँ भी है तो साथ में एकता का भाव भी है।

भारतीय संस्कृति की विविधता का प्रभाव यहाँ की स्थापत्य पर भी देखा जा सकता है। मुगल स्थापत्य, गुप्तकाल का स्थापत्य, नागर शैली, द्रविड़ शैली इत्यादि यहाँ की समुद्र विविधता को दर्शाते हैं। परंतु एक धरोहर व सामुहिक एकता के प्रतीक भी ये स्थापत्य स्थल बने हुए हैं और अतीत से वर्तमान तक सांस्कृतिक रूप से जीवंतता बनी रही है। रोमां रोलां के शब्दों में-

''यदि इस धरातल पर कोई स्थान है जहाँ पर जीवित मानव के सभी स्वप्नों को तब से घर मिला हुआ है जब मानव ने अस्तित्व के सपने देखना आरंभ किया था तो वह भारत ही है।''

'विविधता में एकता' संबंधी विशेषता यहाँ के राजनीतिक, व आर्थिक पर्यावरण में भी दिखती है। विभिन्न विचाराधराओं से युक्त अेकों लोगों का समुह देखा जा सकता है, परंतु विभिन्न विचारधाराओं के होते हुए भी भारत की सुरक्षा, संप्रभुता, संबंधी मामलों में सभी एक हो जाते हैं। गुजराती, मराठी, राजस्थानी, कश्मीरी जैसे क्षेत्रीय विविधता युक्त पहचान होते हुए भी सभी अंतत भारतीय ही है। तभी तो भारतीय होने की भावना के महत्व को बताने हेतु कहा गया है-

''भारत मेरे सम्मान का सबसे महान शब्द

जहाँ कहीं प्रयोग किया जाए

बाकी सभी शब्द अर्थहीन हो जाते हैं।''

हालांकि कई बार यह आरोप लगता है कि विविधता से अलगाव पैदा होता है। परंतु भारत के संदर्भ में देखें तो विविधता ने भारतीय संस्कृति को नई विशिष्टता प्रदान की है। या यूँ कहें कि विविधता ने ही भारतीय संस्कृति को एकता के सुत्र में बांधे रखा है। अंतत: हम कह सकते हैं कि धार्मिक, राजनीतिक, भाषायी, क्षेत्रीय इत्यादि विविधताओं के बावजूद इनमें एकता विद्यमान है जो भारत व इसकी संस्कृति को **'सारे जहां से अच्छा'** बनाता है।

❑❑❑

12. स्वतंत्रता के 75वां वर्ष 'बिहार ने क्या खोया क्या पाया

''मन में हो स्वतंत्रता, शब्दों में विश्वास हो
दिल में हो गर्व, यादें आत्मसात् हो
हो सबका साथ, जन जन का प्रयास हो
हो आजादी की खुशी लम्बी, सबका विकास हो''।

उपरोक्त पंकित आजादी के उस महत्व को प्रस्तुत करते हुए, भविष्य की झलक प्रस्तुत करती है। जिसकी प्राप्ति के लए हमारे स्वतंत्रता सेनानियों, बुद्धिजीवियों, विद्वानों और समस्त देशवासियों ने संघर्ष, त्याग, बलिदान दिया है। स्वतंत्रता प्राप्त कर भावी पीढ़ी को हस्तांतरित किया। साथ ही साथ देश की एकता, भ्रातृत्व, सहभागीता के आधार पर अग्रसर होने के लिए जो भी लक्ष्य निर्धारित लिए हैं उन्हीं में उपलक्ष्य में स्वतंत्रता में 75 वर्ष पूर्ण होने पर अमृत महोत्सव का आयोजन किया गया है।

इस अमृत-महोत्सव का उद्देश्य भारत को विश्व गुरु बनने, आत्मनिर्भर-भारत, भारत की समृद्ध सांस्कृतिक विरासत और भारत के गुमनाम नायको मे बारे में जानना है। इसी परिप्रेक्ष्य में आज हम भारत के महत्वपूर्ण राज्य बिहार भी चर्चा करेंगे और यह जानने का प्रयास करेंगे की जिन आदर्शों मूल्यो, प्रणालियों, संस्थाओं की नीव हमारे पूर्वजो ने रखी थी, उसका संरक्षण और संर्वधन करते हुए कहाँ तक पहुँच पाए है। इस क्रम में हम यह भी देखने का प्रयास करेंगे कि बिहार में जो भी उताड़-चढ़ाव हुए है उससे हमने क्या कुछ पाया? और क्या कुछ खोया है?

विवेकानन्द में अनुसार ''स्वतंत्रता का अर्थ होता है बंधन मुक्त होना, विचारो से स्वेच्छा से हर काम को गति देना, भविष्य को विकास तथा नव निर्माण के लिए मापदंड तय करनाा और जीवन के हर क्षेत्र में कृर्तिमान स्थापित करना।''

बिहार में स्वतंत्रता पश्चात सामाजिक-सांस्कृतिक, आर्थिक, राजनीतिक, मनोरंजन साहित्य, तकनीकी आदि क्षेत्र में अपनी एक पहचान बनाई है। इस विकास यात्रा में नए कृर्तिमान स्थापित किए है।

आजाद के बाद सर्वप्रथम संविधान का निर्माण हमारे पूर्वजो भी अमूल्य देन है, जिसके माध्यम से लोकतांत्रिक प्रणाली को अपनाया गया और देश को कल्याणकारी राज्य के रूप में स्थापित किया है। कल्याणकारी राज्य को दिशा देने के लिए मूल्यों, आदर्शों एवं लक्ष्यों को चिन्हित कर उसे प्राप्त करने का मार्ग भी बतलाया है।

इसी आधार पर बिहार के स्वतंत्रता सेनानी जैसे राजेन्द्र प्रसाद, मोइनुल हक, कर्पूरी ठाकुर, सच्चिदानन्द सिन्हा, श्री कृष्ण सिंह, अनुग्रह नारायण सिंह आदि ने नेतृत्व किया और बिहार को गति प्रदान की, जिसके माध्यम से विभिन्न उपपस्थितयाँ हासिल की गई है। बिहार राज्य ने विभिन्न नीतियो, योजनाओं और कार्यक्रम के माध्यम से जो भी लक्ष्य प्राप्त किए है उन्हें निम्न संदर्यों में देखा जा सकता है।

स्वतंत्रता के पश्चात स्वप्रथम आर्थिक क्षेत्र में अनेक उपयास्थितयाँ प्रापत भी है। इसके तहत **जमींदारी व्यवस्था का उन्मूलन**, भूमि अधि ग्रहन, हदबंदी को लागु किया गया। उसके पश्चात कृषि क्षेत्र में अनेक सुधारात्मक कार्य किए गए जैसे **समग्र कृषि विकास कार्यक्रम** के माध्य से हरित क्रांति की शुरूआत की गई। परिणाम यह हुआ कि खाद्य वस्तु के उत्पादन में 1951 के पश्चात औसतन चार गुणा वृद्धि की गई है। गैर-खाद्य वस्तु में 10 गुणा वृद्धि की गई। खाद्य-सुरक्षा सुनिश्चित किया गया। इसमें साथ ही कोसी, गंडक आदि सिंचाई परियोजना ने कृषि की परम्परागत पद्धति में महत्वपूर्ण परिवर्तन लाए हैं।

उद्योग के क्षेत्र में देखा जाए तो अनेक चीनी मिलो भी स्थापना, बरौनी तेल एवं उर्वरक कारखाने, जमालपुर रेल मरम्मत केन्द्र, इसके अलावा लघु एवं कुटिर उद्योग में स्तर पर राइस मिले, खाद्या प्रसंसकरण, वेयर हाउस, खाद्य पार्क को स्थापित किया गया है। साथ ही साथ टेकस्टाइल, चमड़ा उद्योग, डेयरी उद्योग, मतस्यपालन, कुकुट पालन, इथेनाल उत्पादन उद्योगों को स्थापित किया गया है।

इन्हें बढ़ावा देने के लिए स्टार्ट अप नीति, औद्योगिक निवेश प्रोत्साहन नीति, युवा उद्यमी योजना, महिला उद्यमी, SC/ST उद्यमी योजना की शुरूआत की गई है। वर्तमान में देखे तो सकल राज्य घरेलू उत्पादन 6,75448 करोड़ रुपए पर पहुँच गया है, वर्ष 2001-02 में यह मात्र 57,657 करोड़ गुणे भी वृद्धि देखी गई है। परिणाम स्वरूप बिहार राजस्व में वृद्धि साथ ही साथ लोगों के रोजगार सृजन एवं आय में वृद्धि करने में मदद मिली है।

राजनीतिक रूप से देखा जाए तो लोकतांत्रिक प्रणाली को बढ़ावा देने तथा लोगो की भागिदारी में वृद्धि के लिए अनेक कानून, योजनाओं और कार्यक्रमों को लागू किया गया है। इसके माध्यम से संविधान में संशोधन कर स्थानिय संचायती राज्य संस्थाओं को संवैधानिक आधार प्रदान किया गया। इसके माध्यम से पिछड़े वर्गों, अनुसूचित जाति और जनजाति एवं महिलाओं को आरक्षण प्रदान किया गया। बिहार राज्य में एक कदम आगे बढ़ कर महिलाओं स्थानिय संस्थाओं में 50% तक आरंक्षण सुनिश्चित कर भागिदारी को बढ़ावा दिया गया। जिसका अनुसरण अनेक राज्यों ने भी किया है।

सामाजिक स्तर पर देखा जाए तो जहाँ आजादी के समय बिहार भी साक्षरता दर जहाँ 13.49% (1951) थी जो बढ़कर वर्ष 2011 में 62% तक पहुँच गई है। शिक्षा में आधिकार आधिनियम के तहत लैंगिक समानता को बढ़ावा दिया गया है, परिणाम यह हुआ कि राष्ट्रीय स्वास्थ्य सर्वेक्षण रिपोर्ट के अनुसार बिहार का लैंगिक अनुपात 1090/

पुरुष पहुँ गया है। उच्च शिक्षा के लिए अभ्यार्थियों को **केडिट कार्ड योजना** के माध्यम से सहायता प्रदान करने के लिए प्रोत्साहन प्रदान किया जा रहा है। स्वास्थ के क्षेत्र में भी उल्लेखनीय प्रगति हुई है स्वतंत्रता पश्चात जहाँ प्रति 1000 जन्में बच्चों में 60.70 बच्चों भी मृतयु हो जाती थी, जिसको कम करने के लए संस्थागत प्रसव भी व्यवस्था की गई। अनेक अस्पताल बनावाएं गए है। मिड-डे-मिल एवं आशा कार्यकर्ता तथा आंगनबाड़ी के माध्यम से महिलाओं एवं बच्चों में पोषण सुरक्षा सुनिश्चित किया जा रहा है। द्विव्यांगो में लिए 4-5% आरक्षण शिक्षण संगक्षणों और लोक नियोजन में आरक्षित किया गया है। वृद्ध लोगों के लिए वृद्धारम की व्यवस्था, पेंशन व्यवस्था तथा आर्थिक मदद भी कि जाती है लोक वितरण कार्यक्रम मदद भी कि जाती है। वर्गों के लिए खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित किया गया है। लोगो के लिए रोजगार सुनिश्चित करने में मनरेगा जैसे कायक्रम चलाए जा रहे हैं। जहाँ बिहार से वर्तमान में 40 लाख से ज्यादा लोग जुड़े हुए है।

आधारभूत संरचना में स्तर पर सड़कों, रेलवे, हवाई, जल मार्ग आदि को व्यापक स्तर पर बढ़ावा दिया गया है बिहार सभी राज्यों में सड़क घनत्व में मामले में 8वें स्थान पर पहुँच गया है। उर्जा के क्षेत्र में अनेक उपलब्धियाँ हासिल कि गई है वर्तमान में उर्जा (बिजली) उपलब्धता 6800 MW तक पहुँ चुकी है। प्रति व्यक्ति बिजली उपयोग 329 kwh तक पहुँच गया है।

बिहार अपनी संस्कृति-सभ्यता के लिए पूरे विश्व में जाना जाता है। किसी भी राष्ट्र में धर्म, जाति, भाषा, सभ्यता-संसकृति का महत्वपूर्ण स्थान होता है। जिसके माध्यम भावि पीढ़ी अपनी मूल्यों और परम्पराओं से मार्गदर्शत और प्रेरित होते हैं। बिहार राज्य ने इनके संरक्षण श्और संवर्धन के लिए केन्द्र सरकार के साथ मिलकर महत्वपूर्ण कमद उठाएं हैं जैसे बैद्ध सर्किट, जैन सर्किट आदि। परिणाम स्वरूप सांस्कृति-सभ्यता का संरक्षण होने के साथ-साथ पर्यटन को भी इससे बढ़ावा मिलाता है।

इसके अलावा बिहार के अनेक बुद्धिजीवियों, दार्शनिको, साहित्यकारो, कवियो आदि बिहार की एक नई पहचान दिलाई है जैसे मंडल मिश्र, वाचस्पति मिश्र, विापति, मोहसिन फानी, फणिशवर नाथ रेणु, रामधारी सिंह दिनकर रामवृक्ष बेनीपुर, आचार्य शिवपूजन सहाय, गोपाल सिंह नेपाली आदि। जिन्होंने भावी पीढ़ियों को नई विचारधारा से प्रेरित किया एवं दिशा प्रदान की है।

हालांकि बिहार राज्य की उपलब्धि इतनी आसान भी नहीं रही है क्योकि इस क्रम बिहार राज्य ने अनेक चीजे तो प्राप्त भी है, किन्तु इसमें विपरीत बहुत कुछ खोया भी है। जिस प्रकार आजादी की उम्र लम्बी होती चली जा रही है, इसके दुरूपयोग करने वालो की संख्या भी बढ़ती जा रही है।

एक तरफ तो आज स्वार्थ लोभुप्ता के चलते हमारी सांस्कृति परम्परा का अवमूल्यन तथा आस्था एवं विश्वास का क्षरण हो रहा है। हमारी संस्कृति अनुकरण भी सांस्कृति बनकर रह गई है। मानव के विचार सैधातिम मूल्यों पर निर्भर नहीं रह गए है।

हम भौतिक-सुख सुविधाओं के आदि होकर झुठे सपनो के पीछे भाग रहे है। जससे मर्यादाएँ टूट रही है, परिवार विखड़ रहे हैं। नैतिक मूल्य घट रहे हे। जेसे अमर्यादित पहनावा, आविण्वक परिवार, खान-पान की प्रवृति आदि जीवन में हर क्षेत्र में स्वार्थ का बोलबाला है। स्वतंत्रता के नाम पर आज लोग विचारहीनता, कर्तव्यहीनता दिशाहीनता का शिकार हो गए है।

आर्थिक स्तर पर देखे तो स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात एक तरफ ''माल डुलाई नीति'' ने बिहार भी आर्थिक प्रगति पर चोट भी तो दूसरी तरफ ''बिहार का विभाजन'' 2000 ने तो इसे बहुत पीछे धकेल दिया। जिसके परिणाम स्वरूप 67% राजस्व में स्रोत की क्षति उठानी पड़ी, इसके साथ लगभग महत्वपूर्ण प्रकृतिक संसाधन क्षेत्र भी चले गए। जिसका अफसोस आज भी है इन्हीं सब कारणो से बिहार से प्रवासन की गति तीव्र होने लगी, जिससे सरकार को तो नुकसान उठाना ही पड़ा साथ ही साथ लोग अपने मूल स्थान से विछड़ गए।

राजनीतिक स्तर भी बात की जाए तो जय प्रकाश नारायण जैसे राजनीतिक पथ-प्रदर्शन तो गौण ही हो गए है। अब राजनीति सिर्फ लाभकारी, स्वार्थ पूर्ति बनकर रह गई है। ध्रुव्रीकरण का बोलबाला हो गया है, अवसरवादिता चरम पर पहुँच चुकी है। देश भक्त स्वामिपानी नागरिको की संख्या जिस रफ्तार से बढ़नी चाहिए थी, नहीं बढ़ रही है।

इस उपभोक्तावादी विश्व में भ्रष्टाचार, घोटाले धोखाधरी भी घटनाएँ आम हो गई हें सामाजिक सौदर्य का पतन होता चला जा रहा है। संप्रदायवाद नकशलवाद, आतंकवाद से आज हमारा राज्य ग्रसित हो चुका है।

उपरोक्त प्रवृत्ति को अगर सूक्ष्मता से देखे तो यह अपनी प्रकृति में स्थायित्व नहीं है, क्योंकि यह सिर्फ एक क्षणिक घटनाएँ है जिसका निराकरण यभी संभव है। आवश्यकश्ता है तो उन मूल्यों और आदर्शों को निष्पक्षता पूर्वक लागू करने की तथा लोगो में इसकी प्रेरणा प्रदान करने की जिसका उल्लेख हमारे संविधान में किया गया है।

जिस जिम्मेदारी को हमारे पूर्वजो ने हमे सपूर्द किया था, उसे घुमिल कर हमारी आने वाली पीढ़ी को हस्तांतरित करने का कोई हक नहीं है। आवश्यकता है कि हम सरकार स्वयं सेवी संस्थाओं के साथ मिलकर उन मार्गों पर चलते हुए आदर्शों का पालन करें। क्योकि ''हजारो मील की यात्रा एक कदम से शुरू होती है''।

❑❑❑

13. ''लोकतंत्र में मीडिया की बदलती भूमिका''

''जब संवाद होता है,
तब समाधान निकलता है।
संवाद से ही संभावनाओं का विस्तार होता है।
इसलिए भारतीय लोकतंत्र में ज्ञान के
प्रवाह के साथ ही सूचना का प्रवाह
भी अविरल बढ़ा और निरंतर बढ़ रहा है।''

उपरोक्त कथन फ्रैंकलीन डी रूजवेल्ट का है, जिसके माध्यम से लोकतंत्र में मीडिया की प्रासंगिकता को बताते हुए कहते है मीडिया राष्ट्रीय संसाधन है, जिसके माध्यम से संवाद, समाधान और संभावनाओं का विस्तार होने के साथ संविधान में निहित आदर्शों समानता, स्वतंत्रता, न्याय, बंधुत्व आदि प्राप्त करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

अत: सर्वप्रथम यहाँ इस बात पर चर्चा करेंगे कि लोकतंत्र क्या है? लोकतंत्र में मीडिया की भूमिका क्या है? क्या वर्तमान में लोकतंत्र में मीडिया की भूमिका बदल रही है?

अरस्तु के अनुसार लोकतंत्र वह शासन प्रणाली है, जिसमें सभी नागरिकों को समान अधिकार प्राप्त होता है यह समाज के राजनीतिक एवं सामाजिक न्याय व्यवस्था की प्रणाली को बेहतर करने का कार्य करता है।

अत: लोकतंत्र के द्वारा नागरिकों को सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक स्वतंत्रता मिलती है। इस लोकतंत्र के संदर्भ में अमेरिका के पूर्व राष्ट्रपति अब्राहम लिंकन का विचार है **''लोकतंत्र जनता का, जनता के लिए और जनता द्वारा संचालित शासन है।''**

लोकतंत्र का अर्थ वास्तव में लोगों के द्वारा शासन करना होता है। यह सरकार के द्वारा निर्मित नीतियों को वैधानिकता प्रदान करता है, जिसके कारण लोकतंत्र के विभिन्न स्वरूपों का निर्माण होता है। जैसे- तुर्की में इस्लामिक लोकतंत्र, उत्तर कोरिया में अधिनायकवादी लोकतंत्र, USA में अध्यक्षीय लोकतंत्र और भारत में संसदात्मक लोकतंत्र आदि।

लोकतंत्र का उदय सर्वप्रथम यूनान में 500 ई.पू. में हुआ था। पहली बार यहाँ लोकतांत्रिक सरकार का निर्माण हुआ था। इसके बाद विश्व भर के कई देशों में लोकतंत्र सबसे बेहतर शासन प्रणाली माना गया। इसके आधार पर बेहतर शासन प्रणाली माना गया। इसके आधार पर कई प्रकार के लोकतंत्र जैसे समाजवादी- लोकतंत्र, जनवादी लोकतंत्र, सहयोगी लोकतंत्र, प्रतिनिधि लोकतंत्र, शास्त्रीय लोकतंत्र, प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष, लोकतंत्र, विमर्श लोकतंत्र शासप्रणाली का विकास हुआ।

इस प्रकार भारत में लोकतांत्रिक शासन प्रणाली को बनाए रखने के चार महत्वपूर्ण स्तंभ है। ये हैं- न्यायपालिका, कार्यपालिका, विधायिका और चौथा महत्वपूर्ण आधार स्तंभ में ''मीडिया'' यह एक स्वस्थ्य लोकतंत्र को आकार देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। यह लोकतंत्र का रीढ़ है। मीडिया हमसभी को दुनिया भर में होनेवाली विभिन्न सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक गतिविधियों से अवगत कराता है। यह एक दर्पण की तरह है जो जनता को सत्य और कठोर वास्तविकता को दिखाने का प्रयास करता है।

लोकतंत्र में मीडिया कई रूपों में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है जैसे मीडिया के माध्यम से बहस चर्चा और मतदान के माध्यम से सरकार को जनता के प्रति जवाबदेह बनाता है। यह लोगों को लोकतंत्र के बारे में शिक्षित करता है और साथ ही जनता की राय और सुझावों के माध्यम से लोकतांत्रिक मांगों का निर्माण करके सार्वजनिक नीति के लिए महत्वपूर्ण जानकारी प्रदान करता है। इसके संदर्भ में डॉ० भीमराव अंबेडकर जी का कहना था-

''लोकतंत्र में व्यक्ति के पास केवल सर्वोच्च शक्ति ही नहीं बल्कि उसके ऊपर जिम्मेदारी भी सबसे बड़ी होती है।''

इसके अलावा मीडिया के माध्यम से संवैधानिक मूल्य, आदर्शों जैसे समानता, स्वतंत्रता, बंधुत्व, सामाजिक, आर्थिक न्याय को स्थापित करने में मदद करता है। यह मानव अधिकारों के उल्लंघन, सत्ता का दुरूप्रयोग, न्याय वितरण में कमियाँ, लोकतांत्रिक संस्थानों में भ्रष्टाचार आदि का खुलासा करता है। इसके साथ ही मीडिया सरकार की योजनाओं को जमीनी स्तर पर जागरूकता प्रदान करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। हमारे पूर्व उपराष्ट्रपति श्री एम. के वेकैंयानायडु जी ने मीडिया की सकारात्मक भूमिका को सामाजिक बदलाव के लिए महत्वपूर्ण बताते हुए कहा कि ''स्वच्छता अभियान'' को जन आंदोलन बनाने में मीडिया की भूमिका अभिनंदनीय रही है। इसके अलावा मीडिया सामुदायक स्तर जलसंरक्षण, पर्यावरण-संरक्षण, नवउद्धम के प्रति जनता में विश्वास, चेतना आदि में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

परंतु भारतीय मीडिया ने वर्तमान युग में अखबार और रेडियो से लेकर टेलीविजन और सोशल मीडिया के दिनों में एक लंबा सफर तय किया है। 1990 के दशक में मीडिया घरानों में निवेश भारतीय अर्थव्यवस्था के उदारीकरण से प्रभावित हुआ था, क्योंकि बड़े कॉपोरेट घरानों, व्यवसायों, राजनीतिक, कुलीनों और उद्योगपतियों ने इसे अपनी ब्रांड छवि को सुधारने के लिए एक सुविधा के रूप में इस्तेमाल किया।

भारतीय मीडिया की विश्वसनीयता तेजी से घट रही है, क्योंकि मीडिया उच्च टी.आर.पी. प्रतियोगिता में ससनीखोज समाचार दिखाता है जो सार्वजनिक मुद्दों से संबंधित समाचारों के महत्व को कम करता है।

इसके अलावा मीडिया में पेड न्यूज की समस्या भी लोगों को भ्रमित करता है। कभी-कभी यह गैर जिम्मेदार रिपोटिंग में भी लिप्त हो जाता है और राष्ट्रीय सुरक्षा के लिए संवेदनशील जानकारी लीक कर देता है। उदाहरण के लिए मुंबई में 26/11 आतंकवादी हमले के मामले में गैर जिम्मेदाराना रिपोर्टिंग करा और कभी-कभी भीड़ की भावनाओं को भड़काकर कानून-व्यवसाि की समस्या पैदा करता है।

इसके अलावा भारत में मीडिया की विविधता और गुणवत्ता मीडिया समावेश और लाभ संचालित हितों जैसी समस्याओं से भी प्रभावित हो रहा है। भारत में बढ़ते मीडिया ट्रायल की घटनाओं ने न्याय का उपहास उड़ाया है।

अत: लोकतांत्रिक शासन प्रणाली में मीडिया को लाने का उद्देश्य था लोगों तक सही यूना पहुँचाकर उनके जीवन स्तर को ऊपर उठाया, सामाजिक एकता को स्थापित करना, पर लेकिन वर्तमान समय में मीडिया सामाजिक दायित्व को छोड़कर एक उत्पाद बेचनेवाला बन गया है।

अत: उपरोक्त समस्याओं के खिलाफ भारत सरकार द्वारा मीडिया को सशक्त बनने के अनेक उपाय किए गए हैं जैसे- प्रेस काउंसिल ऑफ इंडिया की स्थापना किया गया है। यह एक ऐसी नियामक संस्था है जो समाचार पत्र, समाचार एजेंसी और उनके संपादकों को चेतावनी दे सकती है।

सूचना प्रौद्योगिकी अधियिम 2008, न्यूज बॉर्डकास्टर्स एसोसिएशन (NBA) यह निजी टेलीविजन समाचार और करेंट अफेयर्स के प्रसारकों का प्रतिनिधित्व करता है एवं उनके विरूद्ध शिकायतों की जाँच करता है। इसके अलावा ब्राड कॉस्टिंग कंटेंट कंप्लेंट काउंसिल (BCCC) की स्थापना किया गया है। यह टी.वी. ब्राडकास्टरों के खिलाफ आपत्तिजनक टी.वी कंटेट और फर्जी खबरों की शिकायत की जाँच करती है। इसके अलावा वर्तमान में मीडिया के बदलती प्रवृत्ति को रोकने के लिए अन्य कदम भी उठाना चाहिए। जैसे पेड न्यूज को मोटे तौर पर कानून द्वारा परिभाषित किया जाना चाहिए और इस संबंध में दंडात्मक उपाय किए जाने चाहिए, प्रिंट और इलेक्ट्रॉनिक मीडिया में टर्फ युद्ध से बचने के लिए उनके पास एकल नियामक होना चाहिए।

अत: लोकतंत्र में मीडिया जवाबदेही तय करता है, लोकतांत्रिक सांस्कृति का निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है, अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता की रक्षा करता है, इसलिए इसे लोकतंत्र का चौथा स्तंभ माा जाता है लेकिन इसके यिमन के बिना भारत में लोकतंत्र के लिए अपमानजनक भी हो सकता है।

इसलिए इसे संवैधानिक सीमाओं और नियमों के भीतर उचित स्वतंत्रता प्रदान की जानी चाहिए। मीडिया भी समाज का एक हिस्सा है समाज और उनके नेताओं को लोकतंत्र और लोकतंत्र की कसौटी पर खरा उतरने से पहले खुद को परखना होगा।

इसके पक्ष में डॉ० अब्दुल कलाम जी का विचार है-

''लोकतंत्र में संपूर्ण राष्ट्र की समृद्ध, शांति और खुशहाली के लिए एक-एक नागरिक का कल्याण, उकी निजता और उनकी खुशी महत्वपूर्ण है जो मीडिया के सहयोग से संभव है।''

❑❑❑

KHAN GLOBAL STUDIES
Kisan Cold Storage Campus, Musallahpur, Patna
KHAN SIR